सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-282002 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 45, अंक : 11, फरवरी-मार्च 2013

अमृत-कण

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दंडेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् 4/3)

अर्थात् तुम्हीं स्त्री हो, पुरुष भी तुम्हीं हो, तुम कुमार, तुम कुमारी भी हो और तुम्हीं दण्ड का सहारा लिये हुए वृद्ध हो, विश्व में सर्वत्र तुम्हीं हो।

◆ ◆ ◆

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।

(गीता 6/29)

अर्थात् सर्वव्यापी अनन्त चेतन में एकीभाव से स्थितिरूप योग से युक्त आत्मा वाला तथा सब में समभाव से देखने वाला योगी आत्मा को सम्पूर्ण भूतों में स्थित और सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में कल्पित देखता है।

◆ ◆ ◆

यद्यत् विभूतिमत् सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्।।

(गीता 10/41)

मनुष्यों में जहाँ अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है, समझो वहाँ मैं वर्तमान हूँ, मुझसे ही इस आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है।

◆ ◆ ◆

अहं वृक्षस्य रेरिवा। कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव। ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि।
द्रविणं सवर्चसम्। सुमेधा अमृतोक्षितः।

(तै. उपनिषद् 1/10)

मैं (संसार रूप) वृक्ष को हिलाने वाला हूँ। मेरी कीर्ति पर्वत के सदृश है। मैं वह हूँ जिसके [illegible] का पवित्र (प्रकाश) ऊँचा उदय हुआ है, मानो सूर्य में है। मैं सुमेधा हूँ, अमृत [illegible] होने वाला।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 45 फरवरी-मार्च 2013 अंक : 11–12

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रोमहर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् 3/4)

जो रुद्र–इन्द्रादि देवताओं की उत्पत्ति का हेतु और वृद्धि का हेतु है; तथा जो सबका अधिपति और महान ज्ञानी–सर्वज्ञ है, जिसने पहले हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया था, वह परमदेव परमेश्वर हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करें।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	7
3.	आध्यात्म जगत के आकाश पर.... – प्रेम बिहारी त्रिपाठी	9
4.	आलौकिक कृपा की विलक्षण घटना	14
5.	योग–आसन – पश्चिमोत्तानासन	17
6.	गुरु बन्दना – रुद्रदत्त चतुर्वेदी	18
7.	गुरु गौरव गीतम् – द्वारका प्रसाद शर्मा	20
8.	ध्यान–धारणा–समाधि.... – डॉ. राजकुमारी त्रिखा	24
9.	अष्टांग योग साधना (बहिरंग) – प्रो. ऋषिराम शर्मा	29
10.	योगेश्वर गम्भीरनाथ जी महाराज की जीवन वृत्त	38

एक प्रति	: रू. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रू. 150.00
द्विवार्षिक	: रू. 280.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रू. 900.00

• विशेष लेख

क्रिया–योग की साधना एवं उसका अमर फल

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योगदर्शन के समाधिपाद में विविध प्रकार की साधनाओं का वर्णन किया है और सब साधनायें समाधि प्राप्ति के स्तम्भ है किंतु कौन किस साधना का अधिकारी है इसका ज्ञान लेना भी एक कठिन सी बात है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में अधिकार – भेद का वर्णन बहुत काफी मात्रा में आता है। वस्तुत: यह ठीक भी है। अधिकार शब्द का अर्थ ही कार्यारम्भ सामर्थ्य है। जो मनुष्य अपनी योग्यता और अधिकार को देखकर कदम बढ़ाता है वह अवश्य ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया करता है। समाधि पाद समाप्त होने के बाद भगवान पतंजलिदेव ने साधनपाद के आरम्भ में ही क्रियायोग का वर्णन किया है। वस्तुत: क्रियायोग अधिकारी एवं अनाधिकारी का स्वत: ही निर्णय कर देता है। इसीलिए भगवान पतंजलिदेव जी ने क्रियायोग का वर्णन विशेष रूप से किया है। यदि किसी व्यक्ति को अनायास ही समाधि रूप उत्तम फल की प्राप्ति हो जाये तो वह उसकी कीमत को नहीं जानता है और कदाचित् उसको प्रयास करना पड़े तो वह जान जायेगा कि यह अनुपम लाभ कितनी मेहनत करने के बाद प्राप्त हुआ है। इसीलिए आवश्यकता है कि मनुष्य समाधिरूप अमर फल को प्राप्त करने के लिए यम–नियमों की साधना पूर्वक क्रियायोग को अपनाये। भगवान श्री पतंजलि देव ने अष्टांगयोग में वर्णित नियमों की तीन साधनाओं को क्रियायोग का रूप दिया है वह निम्नांकित है–

तप: स्वाध्यायेश्वरप्रणि–धानानि क्रियायोग:।

नातपस्विनो योग: सिद्धयति, अनादि कर्मक्लेशवासना चित्ता प्रत्युपस्थित–विषयजाला चाशुद्धिर्नान्तरेण तप: सम्भेदमापद्यत इति तपस उपादानं, तच्च चित्तप्रसादनमबाधमानमनेनासेव्यमिति–मन्यते, स्वाध्याय: त्र प्रणवादिपवित्राणं जप: मोक्षशास्त्राध्ययनं वा, ईश्वरप्रणिधानं त्र सर्वक्रियाणां परमगुरावर्पणं तत्फलसंन्यासो वा।

अर्थात् जन्म–जन्मान्तर की कर्म वासना से आई अशुद्धि तप के बिना खण्डित नहीं की जा सकती, इसलिए क्रियायोग की साधना में भगवान पतंजलि देव ने सर्वप्रथम तप को ही ग्रहण किया और वह तप भी चित्त के लिए क्लेशकर नहीं होना चाहिए। जैसे आजकल के लोग विविध साधनाओं की पूर्ति के लिए कठिन पंचाग्नि तपते है या घोर शीतकाल में जल में बैठकर तपश्चर्या करते हैं, यह सभी साधनायें कठिन क्लेशयुक्त हैं। इसलिए तप के उस स्वरूप को अपनाना चाहिए जिसमें मनुष्य किसी प्रकार की दिक्कत को प्राप्त न हो। जो लोग क्लेशसाध्य तप करते है उनको भगवान ने आसुरी वृत्ति के लोग कहा है जैसे–

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहंकार संयुक्ताः कामरागबलान्विताः।।
कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्।

अर्थात् काम राग बल का सहारा लेकर दम्भ और अहंकार के साथ शरीरस्थ सभी भूत समूह मन और इन्द्रियों को और अन्तः शरीरस्थ मुझको आकर्षित करते हुए जो घोर तप करते हैं वे लोग आसुरी भावना के हैं। वस्तुतः तप का प्रकार क्या है इसका वर्णन भगवान श्रीकृष्ण ने तीन प्रकार से किया है। शारीरिक तप, वाङ्मय तप और मानस तप।

शारीरिक तप—

देवद्विजगुरुप्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।।

अर्थात् देव, द्विज, गुरुदेव एवं बुद्धिमान लोगों का पूजन नम्रता, शुद्धि रखना कठिन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना एवं मन, वचन कर्म से किसी को भी दुःख न देना यह शारीरिक तप कहलाता है। जो परमोत्कृष्ट है।

वाङ्मय तप—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।

अर्थात् मीठा और सत्य दूसरों को हितकारी वचन बोले और स्वाध्याय का अभ्यास करे इसी को वाङ्मय तप कहा गया है। मानस तप गीताकार ने इस प्रकार बतलाया है—

मानस तप—

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो — मानसमुच्यते।।

अर्थात् मन की प्रसन्नतापूर्वक सौम्यभाव से मनोनिग्रह करते हुए अन्तःकरण की शुद्धि के लिए जो तप किया जाता है वह ठीक रूप से मानस तप कहलाता है। उसमें भी अहंकार को छोड़कर व फल की इच्छा को छोड़कर जो तप करते है यह तप सात्विक कहलाता है। इसके अतिरिक्त सत्कार, मान, पूजार्थ और दम्भ के लिए तप किया जाता है वह राजस तप कहलाता है। इसके अतिरिक्त मूढ़तापूर्वक कठोर आग्रह पूर्वक शरीर और मन को पीड़ा देते हुए या दूसरों को नष्ट करने के लिए जो तप किया जाता है वह तामस कहलाता है। भगवान ने ऐसे घोर तपों को छोड़ देना ही उचित समझा है। जो मनुष्य यथार्थ में तपस्वी है वह शास्त्रोक्त फल का भागी अवश्य हो जाया करता है। भगवान पतंजलि देव तप का फल इस प्रकार लिखते हैं—

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः।

अर्थात् तप के द्वारा अशुद्धि नाश हो जाने पर योगी को कायिक सिद्धि अणिमा, महिमा, गरिमा आदि एवं ऐन्द्रिय सिद्धि दूरदर्शन, दूरश्रवणादि अनायास ही प्राप्त हो जाती है। जिस व्यक्ति को योग के अष्टविधि ऐश्वर्य अणिमादि एवं दूरदर्शन, दूरश्रवणादि ऐन्द्रिय सिद्धियों की प्राप्ति हो जायेगी वह तो कृतकृत्य हो जायेगा। इसलिए क्रियायोग की साधना व सिद्धि के लिए तप बहुत ही आवश्यक है। उसके साथ-साथ क्रियायोग के अन्तर्गत दूसरी साधना स्वाध्याय की है। शास्त्रोक्त विधि से स्वाध्याय के दो भाग माने गये हैं –

प्रणवादि पवित्राणां जप: स्वाध्याय: मोक्षशास्त्राणां अध्ययनं वा स्वाध्याय।

अर्थात् प्रणव आदि पवित्र नामों का जप करना व मुक्तिदाता शास्त्रों का पाठ करना स्वाध्याय कहलाता है। हमारा शास्त्रीय सिद्धान्त है –

स्वाध्यायाद्योगमासीत् स्वाध्यायाद्योग मामनेत्।
स्वाध्याय योग सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते।।

अर्थात् स्वाध्याय के प्रभाव से साधक योग ध्यान को प्राप्त करे और ध्यानस्थ हो जाने के बाद स्वाध्याय का मनन करे। अर्थात् स्वाध्याय के ध्येय अर्थ का चिन्तन करे। स्वाध्याय और योग ध्यान से जो शक्ति-संचय होगी उसके फलस्वरूप परमात्मा का प्रकाश हो जायेगा।

स्वाध्याय के प्रकार –

स्वाध्यायशील व्यक्ति को चाहिए कि प्रथम अपने इष्टदेव के स्तोत्र का जाप करे। और स्तोत्र जाप के पाठ के अनन्तर गुरु-प्रदत्त अपने मन्त्र का वाणी से जाप करे। वाणी से दो या तीन घण्टे का जाप करे। तीन घण्टे वाणी से जाप कर लेने के बाद फिर वह मन्त्र मन में होने लगता है, और तीन घण्टे मानस जप करने के बाद फिर वह मन्त्र बुद्धि में प्रवेश कर जाता है। और मन्त्र के बुद्धि में प्रविष्ट हो जाने के बाद स्वत: ही समाधि का प्रकाश हो जाता है। इसी कारण स्वाध्याय समाधि का प्रकाशक है। योगदर्शन में स्वाध्याय का फल निम्नांकित सूत्र में लिखा है –

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोग:।

देव, ऋषय:, सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छन्ति, कार्यं चास्य वर्तन्त इति।

अर्थात् देवता लोग, ऋषि लोग और सिद्ध लोग स्वाध्यायशील व्यक्ति की आँखों के सामने आया करते हैं और उसके काम कर दिया करते हैं। ये स्वाध्याय का उत्तम परिणाम है। स्वाध्याय की पराकाष्ठा बढ़ जाने के बाद मनुष्य के मन में अपने आप ही प्रकाश का उदय हो जाता है। और स्वाध्याय के फलस्वरूप ज्योंही समाधि मार्ग में प्रवेश करता है तो–

सर्व द्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते। ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्वमित्युत।।

अर्थात् जिस समय मनुष्य के मन में एवं शरीर में, सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश की अनुभूति हो उस समय यह समझ लेना चाहिए कि पूर्ण सत्व का उदय हो गया है और सत्वोदय हो जाने के

बाद सतोगुण के फलस्वरूप महाभाव का उदय हो जाता है। महाभाव में मनुष्य स्वतः ही अपने इष्टदेव को आत्मसमर्पण कर देता है। गीता में भगवान कृष्ण ने आत्म–समर्पण के भाव को समझाते हुए ये शब्द कहे हैं–

यत्करोसि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासियत्।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्वमदर्पणम्।।

अर्थात् हे अर्जुन जो भी कुछ तुम करते हो और जो कुछ तुम खाते हो, जो कुछ तुम हवनादि करते हो और जितनी तुम तपश्चर्या करते हो वह सब कुछ मुझे सौंप दो। भगवान ने ये शब्द अर्जुन को आदेशात्मक कहे हैं किंतु सच्चा आत्म–समर्पण बिना योग के हो ही नहीं सकता और जो मनुष्य स्वाध्याय के बल से योग को प्राप्त हो जाता है और जब उसके अन्दर पूर्णरूपेण महाभाव का उदय हो जाता है तो उसको स्वाभाविक ही ईश्वर प्रणिधान हो जाया करता है और ईश्वर प्रणिधान हो जाने पर स्वतः ही समाधि सिद्ध हो जाती है पढ़िये भगवान पतंजलिदेव के शब्द और उन पर व्यासदेव जी का भाष्य –

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।

ईश्वरार्पितसर्वभावस्य समाधिसिद्धिः यथा सर्वमीप्सितमवितथं जानाति, देशान्तरे, देहान्तरे, कालान्तरे च ततोऽस्य प्रज्ञा यथाभूतं प्रजानाति।

अर्थात् ईश्वर आदि महासिद्ध है, यदि कोई व्यक्ति ईश्वर को आत्म–समर्पित करता है तो भक्ति समाधि सिद्ध हो जाती है। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि साधक को अपना जीवन उत्कृष्ट बनाने के लिए क्रिया योग का अवलम्ब लेना बहुत ही जरूरी है। इस साधना को करता हुआ साधक यदि अपने युक्ताहारविहार आदि के नियमों को पूर्णरूपेण परिपक्व रखता है तो वह अवश्य ही योग के अन्तिम निष्कर्ष समाधिरूप अमरपद को प्राप्त करता है जिसको प्राप्त करके फिर कुछ भी प्राप्तव्य शेष नहीं रहता है।

● ● ●

विदेशेषु धनं विद्या व्यसनेषु धनं मतिः।

परलोके धनं धर्मः शीलं सर्वत्र वै धनम्।।

'परदेश में विद्या, विपत्ति में सद्बुद्धि, परलोक में धर्म धन (सहायक) है, परंतु शील-सदाचार तो ऐसा धन है, जो लोक और परलोक दोनों में साथ देता है।' इस प्रकार शील सार्वभौम सुख का साधन है।

• सम्पादकीय

सिद्धयोग - हमारी प्यारी पत्रिका

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

प्रिय पाठकगण / गुरु भाई–बहिन,

जय गुरुदेव की!

क्षण–क्षण स्मरणीय गुरुदेव योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के संकल्प से प्रकट कल्पवृक्ष के रुप में हमारी पत्रिका 'सिद्धयोग' अपनी आयु के 45 वर्ष पूरा करके अप्रैल विशेषांक के साथ ही 46वें वर्ष में प्रवेश पा रही है। श्री गुरुदेव भगवान ने इस पावन वृक्ष का आरोपण सन 1968 में किया था, जिसका एकमात्र लक्ष्य था कि योग जिज्ञासु इसके माध्यम से योग तत्व व सिद्धान्त को समझ लें जिससे योग मार्ग पर चलकर आध्यात्मिक उन्नति के चरम लक्ष्य की ओर वे चल सकें। आज के इस विकासशील युग में भौतिक उन्नति के साथ–साथ धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में भी जागरूकता आ गयी है। इसी क्रम में धार्मिक व आध्यात्मिक पत्र–पत्रिकाओं का भी समाज में व्यापक प्रचार कार्य चल रहा है। किन्तु 'सिद्धयोग' जिस प्रकार से योग के सैद्धान्तिक दुरूह व दुर्बोध्य पक्ष को अत्यन्त सरल भाषा में बोधगम्य बना देती है ऐसा दूसरी पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलता।

'सिद्धयोग' गुरुदेव से सम्पर्क बनाये रखने का सक्षम माध्यम रही है। साधक घर बैठे ही गुरुदेव के उपदेश एवं आज्ञाओं का संकेत पा जाया करते हैं। पत्रिका के माध्यम से भी गुरुदेव की आत्मिक शक्ति का संचार शिष्यों में होता रहता है। साधकों के मन में उठने वाले संशयों का निवारण भी इससे हो जाता है।

वेदान्त प्रक्रिया में आत्म दर्शन की ओर चलने के साधन के रुप में तीन अंगों का वर्णन किया गया है। वेदान्त का सिद्धान्त है – ***आत्मा वा अरेदृष्टव्यः, श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्यः।*** अर्थात् आत्मा का दर्शन करना चाहिए। इसके लिए सर्वप्रथम श्री गुरुदेव के मुख से आत्म तत्व के विषय में श्रवण करना चाहिए। श्रवण करने के पश्चात् मनन करना चाहिए। ठीक प्रकार से मनन हो जाने पर निदिध्यासन में बैठना चाहिए। निदिध्यासन ही योग की भाषा में ध्यान–योग का अभ्यास कहलाता है। श्री गुरुदेव जब शिष्य को उपदेश करते हैं तो शब्द के माध्यम से शिष्य पर शक्ति संचार होता है। योग के ग्रन्थों में शक्तिपात के अनेक प्रकार की दीक्षाओं का वर्णन मिलता है। इनमें संकल्प दीक्षा, स्पर्श दीक्षा, दृग दीक्षा, हार्द दीक्षा आदि दीक्षाओं का वर्णन है। गुरुदेव दीक्षा दान के समय गुरुमन्त्र के माध्यम से शिष्य के दाहिने कर्ण में शक्ति का संचार करते हैं। आनन्दकन्द श्री गुरुदेव भगवान् ने 'सिद्धयोग' परम्परा को अक्षुण्ण रखा है। सिद्धयोग के पठन से कोई भी योग जिज्ञासु योग की परिभाषा, स्वरुप, विधि एवं लक्ष्य समझ सकता है। श्रद्धालु साधकों में सिद्धयोग के माध्यम से ही गुरुदेव के दर्शन एवं कृपालाभ होते देखा गया है। जीवन से परेशान कई व्यक्तियों को सन्मार्ग मिला और जीवन की धारा ही बदल गयी। पत्रिका के

पठन–पाठन एवं अनुशीलन से उत्साह, उल्लास एवं मार्गदर्शन मिलता है। योग शास्त्र अत्यन्त गहन है, इसके दुरूह विषयों को समझना बहुत कठिन है, किन्तु सिद्धयोग ने इसे अत्यन्त सरल एवं सुबोध्य बनाया है। पत्रिका का अध्ययन साधक के अन्दर श्रद्धा का बीज बो देता है। जिसे योग साधना की नींव माना गया है। जिसमें सम्यक् श्रद्धा नहीं है, वह विनष्ट हो जाता है। भगवान के गीता में वचन है– **'संशयात्मा विनश्यति'** अर्थात् संशय युक्त व्यक्ति पथभ्रष्ट होकर पतन की ओर चला जाता है। इसलिए 'सिद्धयोग' श्रद्धा एवं स्वाध्याय का अचूक साधन है। साधक को स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए। गुरुदेव अपने शिष्यों को उपदेश करते हुए कहते हैं कि – **'स्वाध्यायाद् मा प्रमदितव्यम्'** अर्थात् स्वाध्याय में कदापि प्रमाद नहीं करना चाहिए। गुरुमन्त्र का जाप भी उत्तम श्रेणी का स्वाध्याय है, इसमें प्रमाद या लापरवाही नहीं करनी चाहिए। अस्तु।

पत्रिका के लिए, गुरुदेव के समय से ही, किसी प्रकार की विज्ञापन आदि सामग्री प्रकाशनार्थ स्वीकार कर वित्तीय आय जुटाने अथवा सहायता प्राप्त करने का उद्देश्य नहीं रहा है, वह आज भी यथावत् है। 25–30 हजार रुपये का वार्षिक घाटा सहन करके भी पत्रिका अबाध गति से प्रकाशित हो रही है, यह सब पूज्य गुरुदेवजी की कृपा का ही फल है। उदारमना गुरुभाई–बहिनों के आर्थिक सहयोग से घाटे की पूर्ति हो जाती है।

अन्त में, मैं उन सभी मनीषी विद्वान लेखकों एवं रचनाकार कवियों के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिनके उत्कृष्ट योगपरक लेख एवं सारगर्भित रचनाओं से पत्रिका की महत्ता व शोभा बनी हुई है। मैं उनसे इसी प्रकार अपनी रचनायें, लेखादि निरन्तर भेजते रहकर स्नेह भाव बनाये रखने का नम्र अनुरोध करता हूँ। पत्रिका के पाठकों व ग्राहकों से भी निवेदन करूँगा कि वे नियमित ग्राहक बने रहें तथा कम से कम 5 नये सदस्य अवश्य जोड़ें। इस दिशा में गंगापुर मंडल, कानपुर मंडल व सहारनपुर मंडल के साधकों का प्रयास वस्तुतः स्तुत्य है। इस अंक के साथ ही वार्षिक ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो रहा है, अतः समय पर आगामी वर्ष के लिए शुल्क भेज दें। वार्षिक शुल्क रु. 150/– हो गया है तथा आजीवन शुल्क रु. 900/– हो गया है।

आप सभी के लिए आने वाला वर्ष मंगलमय हो। आनन्दकन्द श्री प्रभु जी का परम पावन प्राकट्य दिवस श्री रामनवमी योग महोत्सव के रूप में सवाँई आश्रम, आगरा में बड़े हर्षोल्लास व धूमधाम से मनाया जायेगा, सभी श्रद्धालु भक्त उसमें सम्मिलित होकर श्री प्रभु जी की कृपा कोर को पाकर जीवन को धन्य बना लें। इस अवसर पर श्री प्रभु जी के चरणों में सभी भक्तों का कोटि–कोटि नमन है।

श्री रामनवमी योग महोत्सव दिनांक 17, 18 व 19 अप्रैल, 2013 को मनाया जाना निश्चित हो चुका है।

आपका

डॉ. दासलाल योगाचार्य

● ● ●

आध्यात्म जगत के आकाश पर चमकता हुआ एक सितारा अब डूब गया

– प्रेम बिहारी त्रिपाठी, से.नि. अधिशासी अभियंता, झाँसी

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अनेक यौगिक विभूतियों और सिद्धियों से परिपूर्ण थे। यह एक ऐसे योगी थे, जिन्हें जन्म से ही भगवान श्री कृष्ण में एवं महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज से दीक्षा लेने के पश्चात, भगवान सदाशिव में पूर्ण लयता बनी रहा करती थी। स्वयं उच्च शिक्षित होने के कारण स्वाध्याय एवं यौगिक साहित्य में उनकी गहरी पैठ थी। योग प्रचार के विस्तार और उसे प्रभावशाली बनाये रखने के लिए, वह जन्म जन्मान्तरों से भटके हुए, साधकों को खोजते रहते थे। किसी भी व्यक्ति के सामने आते ही, वे तुरन्त ही उसके पिछले तीन जन्मों के संस्कारों को देख लेते थे और यदि जरूरत समझते तो उसके पिछले सात जन्मों के संस्कारों को देखने में उन्हें देर नहीं लगती थी। उन्हें तलाश रहती थी उच्च यौगिक संस्कारों वाले साधकों की, जिन्हें शक्तिपात द्वारा योग्यसाधक और फिर योग्य साधक से सिद्ध योगी बनाकर, ब्रह्म की स्थिति तक पहुँचाया जा सके।

सन् 1957 में पहली बार, वो विद्यार्थी आगरा से एक बीमार को साईकिल पर बैठाकर मुफ्त इलाज एवं मुफ्त भोजन मिलने की बात से प्रभावित होकर, श्री सिद्धगुफा सवाई, एत्मादपुर आगरा के आश्रम में प्रवेश किया। सद्गुरुदेव योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने कक्ष के सम्मुख आरामकुर्सी पर विराजमान थे। बीमार का परिचय एवं हाल उस विद्यार्थी ने बताया। सद्गुरुदेव वह सब तो सुन ही रहे थे, किंतु इस बीच विद्यार्थी के पिछले तीन जन्मों की संस्कारगत आध्यात्मिक विशेषतायें एवं उसके इस जन्म के संस्कारों का क्रियात्मक भविष्य उनके सम्मुख स्पष्ट हो गया था। वह ऐसे साधकों की तलाश में रहते थे, जिनमें शक्तिपात करने पर, वह उसे पचा सकें। योग की गहराइयों में उतरकर, उनमें त्याग और तप करने की अभूतपूर्व क्षमता भी हो, ताकि दी गई शक्तियों में वे अभिवृद्धि करने के साथ–साथ, योग की उच्चतम उपलब्धियों को प्राप्त कर सकें। अधिकांश शिष्य आशा के विपरीत ही मिला करते थे। इसलिए वह प्रायः अपने प्रवचनों में कहा करते थे, 'भाडे (बर्तन) तो मिले पर चौंदे मिले।' फूटे बर्तनों में कुछ रुकता नहीं, सब बह जाता है।

इस विद्यार्थी को उन्होंने आश्रम आते रहने को कहा, तो विद्यार्थी ने स्पष्ट रूप से इंकार कर दिया और कह दिया कि उसे आश्रम आने में कोई रुचि नहीं है और समय भी नहीं मिलता। सद्गुरुदेव ने फिर समझाया 'लल्ला जब कभी समय मिलता होगा, तो कहीं न कहीं तो जाते ही होगे, यहीं चले आया करो।' विद्यार्थी अपनी पढ़ाई लिखाई के कार्यों के समय को किसी भी हालत में, अन्य किसी विषय पर लगाना नहीं चाहता था। लेकिन सद्गुरुदेव की दृष्टि, वाणी और स्पर्श के द्वारा विद्यार्थी पर जो शक्तिपात हो गया, उसने विद्यार्थी के कर्माशय में दबे हुए, आध्यात्मिक संस्कारों को प्रकृति के नियमों को तोड़ते हुए, उन्हें ऊपर लाकर, अंकुरित करने में

कोई विलम्ब नहीं किया, जिसके फलस्वरूप वो विद्यार्थी न चाहते हुए भी हफ्ते–दस दिन में एक बार आश्रम अवश्य पहुँचने लगा। यही नहीं, उसके सूक्ष्म शरीर के अन्तःकरण चतुष्टय में परिवर्तन की लहर जाग उठी। दूसरी तरफ गुरुदेव यह भी चाहते थे कि उक्त विद्यार्थी पढ़ाई में भी उत्कृष्ट रहे। अतएव विद्यार्थी अपने अध्ययन के उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त करता हुआ, योग की गहराइयों में उतरने लगा। आगरा से हिन्दी व संस्कृत में एम.ए., सागर यूनीवर्सिटी से पी.एच.डी. तथा वाराणसी संस्कृत यूनीवर्सिटी से दर्शन एवं साहित्य में 'आचार्य' की डिग्री प्राप्त कर अनेक महाविद्यालयों में शिक्षण कार्य करते हुए भारत सरकार की योग एवं शिक्षा से सम्बन्धित कई विश्वस्तर की संस्थाओं के उच्चपदों पर रहने का श्रेय, सद्गुरु देव की कृपा से प्राप्त हुआ। यही विद्यार्थी आगे चलकर सवाई आश्रम से जुड़े गुरु भाइयों के द्वारा आचार्य चन्द्रहास शर्मा के नाम से जाना गया।

वर्ष 1964 में गंगादशहरा के अवसर पर, ध्यान में सद्गुरुदेव ने स्वयं श्री प्रभुजी का स्वरूप चन्द्रहास के हाथों में विशेष आशीर्वाद के साथ दिया था, किंतु जब वह ध्यान से उठे तो श्री प्रभुजी का स्वरूप भौतिक रूप से भी उनके हाथों में था। यह एक दिव्य–दीक्षा संस्कार था, जिसके पात्र वे बने। इसके पश्चात् सन् 1967 में अपनी पत्नि श्रीमती सरिता भारद्वाज के साथ उन्होंने सद्गुरुदेव योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से ऋषिकेश में विधिवत शक्तिपात मंत्र दीक्षा ग्रहण की। श्री सद्गुरुदेव की प्रेरणा से चन्द्रहास शर्मा ने सिद्धयोग मासिक पत्रिका के लिए अनेक उच्चकोटि के आध्यात्मिक लेख लिखे। मेरा परिचय इनसे सिद्धयोग में प्रकाशित 'सूक्ष्मशरीर की साधना' नामक लेख के माध्यम से बड़ी ही विचित्र परिस्थितियों में सवाई आश्रम में सद्गुरुदेव भगवान की उपस्थिति में हुआ था। सन् 1980 में सवाई आश्रम में श्रीसद्गुरुदेव भगवान से दीक्षा ग्रहण करने के बाद, मेरा मन इस लेखक को तलाशता रहा कि आखिर ये हैं कौन व्यक्ति, जिसने अन्तःकरण चतुष्टय के इन गोपनीय रहस्यों को इतनी सरलता से उद्घाटित किया है। उस समय जिज्ञासा यहीं आकर रुक गई.......।

उस दिन 1981 का दशहरा था। श्री सद्गुरुदेव का जन्मदिन सवाई आश्रम में मनाया जा रहा था। लगभग पन्द्रह बीस हजार लोगों की भीड़ सद्गुरुदेव के अभिषेक कार्यक्रम का आनन्द ले रही थी। मैंने अनेक लोगों से चन्द्रहास शर्मा नामक व्यक्ति के विषय में पूछा क्योंकि मैं उनसे मिलना चाहता था। तभी एक भाई जी ने धीरे से इशारा करते हुए बताया, 'आपके बगल में जो धोती कुर्ता पहिने बैठे हैं, वही तो शर्मा जी हैं। मैंने चन्द्रहास शर्मा को देखा, वह अपने नेत्र बंद किये, ध्यान में बैठे थे। कुछ ही मिनट बाद, अधखुले नेत्रों में तुरीय स्थिति देखकर, मैं चुपचाप सद्गुरुदेव के जन्म उत्सव का आनन्द लेने लगा। लगभग 1 घण्टे बाद चन्द्रहास शर्मा को मैंने सामान्य स्थिति में वापिस आते देखा, यह कहते हुए सुना, 'वाह प्रभु! आपकी लीला का कोई पार नहीं है| आप आप ही हैं।

मैंने धीरे से पूछा, "ऐसा आपने भाई जी क्या देखा है जो आप ऐसा कह रहे हैं? उत्तर

मिला 'गुरुदेव की लीला।' लीला! मुझे तो कोई लीला नजर नहीं आ रही है। गुरुदेव सामने बैठे हैं और अभिषेक चल रहा है, मैंने कहा।

'नहीं भाई नहीं, तुम क्या सोचते हो गुरुदेव जो सामने बैठे हैं, यह बस यहीं है, बस इसी आश्रम में बैठे हैं। अरे भाई! यह तो इस समय अनेक लोकों में विराजमान हैं। मैं ध्यान की स्थिति में इन्हीं के साथ था। ये सब मुझे दिखा रहे थे। तुम सोचते होगे कि गुरुजी यहीं पर इसी आश्रम में, हमारे सामने ही विराजमान हैं, किंतु यह पूरा सच नहीं है। गुरुजी तो इस समय कई लोकों में हैं, उनकी पूजा वहाँ हो रही है।

मेरे लिए चन्द्रहास जी की ये बातें बड़ी अजीब–सी थी। मैंने तुरन्त उनसे पूछा, मैं तो इस आश्रम से पिछले वर्ष ही जुड़ा हूँ। लोग कहते हैं कि गुरुदेव सब पर कृपा करते हैं, बड़े कृपालु हैं, क्या आप पर गुरुजी ने भौतिक दृष्टि से कभी कोई कृपा की है? मेरे प्रश्न के उत्तर में वह कुछ क्षण चुप रहे और फिर कुछ लहर सी आई उनमें, वह बताने लगे, 'पिछले वर्ष 1980 दशहरा के दिन मेरा प्राणान्त हो गया था। मैं दिल्ली में अपने निवास पर कुछ दिन से बीमार चल रहा था। बीच में टोकते हुए आश्चर्य से मैंने पूछा, 'फिर आप इस समय जीवित कैसे...? अपनी बात पूरी करते हुए, 'चन्द्रहास जी ने बतलाया, 'गुरुजी मेरे कक्ष में आये, जहाँ मेरा मृत शरीर पड़ा था, उन्होंने अमृत – विद्या के द्वारा मुझे जीवन दान दिया, पुनर्जीवित किया। मेरा नया रजिस्ट्रेशन किया और मुझे बत्तीस वर्ष का और जीवन दिया। मैंने पूछा, 'भाई जी जब आप शरीर के बाहर थे, तब आप क्या देख रहे थे?' उन्होंने गम्भीर होते हुए कहा 'कुछ समय तक तो सब कुछ यथावत याद रहा, किंतु बाद में गुरुदेव ने सारे घटनाक्रम पर पर्दा सा डाल दिया।' फिर भी जो कुछ याद हो, थोड़ा बतलाइये, मैंने आग्रह किया। वह बताने लगे 'मृत्यु के बाद जीवन की क्षीण आशा समझ कर मेरे मृत शरीर को गाड़ी में रखकर जब राममनोहर लोहिया अस्पताल ले जा रहे थे, तो मैं उस गाड़ी को जिसमें मेरा मृत शरीर रखा था, स्पष्ट देखता हुआ गाड़ी के साथ–साथ जा रहा था। एक रेलवे चौकी का फाटक बंद था, तो गाड़ी रुक गई। काफी देर बाद चली। अस्पताल में मेरे मृत शरीर को मृत घोषित करने के बाद फिर घर ले आये और शमशान ले जाने की तैयारी होने लगी। इसी बीच कमरे में सद्गुरुदेव आ गये और फिर पुनर्जीवन दान देने की उन्होंने अमृत–विद्या से कृपा प्रारम्भ कर दी। मेरा ये जीवन अब उनकी धरोहर है। मैं भी गम्भीर हो गया था, यह सब सुन कर। फिर भी प्रश्न मुँह से निकल गया। "अजीब बात है पिछले वर्ष 1980 के दशहरे में, मैं यहीं गुरु जी के आस–पास आश्रम में ही मौजूद रहा। गुरु जी इसी तरह शिष्यों की भीड़ से घिरे रहे, कहीं भी नहीं गये। सारे दिन कार्यक्रम चलता रहा। फिर आप बता रहे हैं कि वह आपको जीवन दान देने के लिए, दिल्ली पहुँचे और आपके उक्त कक्ष में प्रकट होकर आपको जीवन दान दिया।"

मुझे समझाते हुए भाई जी ने बताया, 'अभी भी गुरुजी यद्यपि सामने बैठे दिखाई दे रहे हैं, किंतु यह केवल यहीं पर है, ऐसा नहीं है, बल्कि यहाँ रहते हुए भी, अन्य कई स्थानों पर यह

इस समय मौजूद हैं। यह तो एक से अनेक हो जाते हैं, कई शरीर एक साथ बनाकर, सिद्धियों द्वारा किसी भी स्थान पर किसी भी लोक में क्षणों में चले जाते हैं।'

एटा जिले के गाजीपुर महोर में दिनांक 24–04–1938 को एक मध्यम श्रेणी गौड़ ब्राह्मण परिवार में जन्मे चन्द्रहास शर्मा को सद्गुरुदेव अकसर कहा करते थे, 'लल्ला तुम मेरे लिए बहुत कीमती हो।' इसका अर्थ क्या है, यह सोचते ही कुण्डलिनी शक्ति सहस्त्रासार में जाकर उसे खिला देती, नेत्र अपने आप बन्द होने लगते और एक विशेष प्रकार के आनन्द की अनुभूति घेर लेती। कुण्डलिनी शक्ति का स्थायी ठहराव आज्ञा चक्र बन गया। वह आज्ञा से लेकर सहस्त्रासार के बीच ठहरी रहती।

सद्गुरुदेव के कानपुर योग प्रचार के दौरान वर्ष 1976 में अपने विशेष शक्तिपात द्वारा चन्द्रहास को शाम्भवी स्थिति प्रदान कर दी। यही नहीं, कुछ ऐसा भी आशीर्वाद दिया, जिससे चन्द्रहास को दीवारों, पत्थरों, वृक्षों के पार दिखाई देने लगा। हर व्यक्ति उन्हें कपड़ों के भीतर नग्न दिखाई देने लगा। इस विचित्र स्थिति को पाकर वह बहुत घबराये एवं दुखी होकर सद्गुरुदेव के चरणों को पकड़ कर रोने लगे, 'प्रभु मुझे यह सब नहीं चाहिए इसे मुझसे हटाइये।' इतनी प्रार्थना करते ही, वह सारी स्थिति समाप्त हो गई, परन्तु शाम्भवी स्थिति का आनन्द वह उठाते रहे। उनके नेत्र घण्टों ऊपर टँगे रहते थे। मैंने उनकी यह स्थिति वर्ष 1986 में वाराणसी के योग प्रचार कार्यक्रम के दौरान, उनके साथ भ्रमण करते हुए विशुद्धानन्द कानन में, विशुद्धानन्द जी के शयन कक्ष में एवं उनके नौमुण्डी सिंहासन के निकट देखने को मिली थी। जो कुछ विचित्र है, आनन्ददायक है, वह सब सद्गुरुदेव की कृपा का प्रसाद है, ऐसा वह सोचते थे। योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने भौतिक शरीर की विश्रान्ति के बाद का भविष्य देख कर, चन्द्रहास जैसे बच्चों को उनके स्वभाव एवं क्षमता के अनुसार योग प्रचार कार्यक्रमों को चलाये रखने की सम्भावनायें देख रहे थे। उन्होंने देखा, सवांई आश्रम के आंगन में एक भारी वृक्ष के तने से, अनेक मोटी, पतली और मझोली शाखायें फूट पड़ीं। प्रारम्भ में तो किसी को यह सब अच्छा नहीं लगा, किसी को नहीं पचा किंतु धीरे–धीरे उन शाखाओं ने अनेक यौगिक आश्रमों का रूप ले लिया और हर किसी आश्रम में महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज, योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के दिव्य स्वरूप स्थापित हुए और योग प्रचार का कार्यक्रम अपनी–अपनी शक्ति के अनुसार उन शाखाओं द्वारा प्रचारित होने लगा और हो रहा है, आगे भी होता रहेगा।

चन्द्रहास शर्मा ने अपना कोई आश्रम नहीं बनाया किंतु फिर भी उनके प्रवचनों और कार्यक्रमों से लगभग आठ दस हजार परिवार आध्यात्मिक लाभ के लिए उनसे जुड़े। उन्होंने बहुत कम लोगों को अपना विधिवत शिष्य बनाया। प्रायः शिक्षक और छात्र की तरह, वह सिखाने, समझाने और देने में संकोच नहीं करते थे। कांगड़ा, दिल्ली, झाँसी, पलैरा, कालपी, कानपुर आदि क्षेत्रों में योग प्रचार का गुरुप्रदत्त कार्यक्रम प्रतिवर्ष जोर–शोर से चलाते थे।

चलाये जाने वाले कार्यक्रमों में वह प्रधान भूमिका स्वयं निभाकर, श्री सद्गुरुदेव की दिव्य इच्छाओं व आज्ञाओं का पालन करते रहे।

प्रथम बार चन्द्रहास शर्मा ने लगभग 42 वर्ष की उम्र में 1980 दशहरे के दिन दिल्ली में अपना शरीर छोड़ा था, किंतु सद्गुरुदेव भगवान के द्वारा जीवनदान देकर, पुनर्जीवित कर देने एवं लगभग 32 वर्ष की आयु प्रदान करने के कारण उन्हें योग प्रचार के लिये पर्याप्त समय मिला, जिसका उन्होंने प्रथम वरीयता पर योग प्रचार हेतु उपयोग किया।

द्वितीय बार 30 दिसम्बर 2012 लगभग 74 वर्ष की उम्र में कांगड़ा हिमाचल प्रदेश में योग प्रचार के कार्यक्रम को सफल बनाते हुए, योग शिविर के अंतिम दिन, सब योगियों व साधकों को विदा करने के बाद, स्वयं भी इस भौतिक संसार से विदा ले ली। उन्हें मामूली सा चक्कर आया और वो गिरने को हुए, तो योग साधकों ने उनको सम्भाला, लिटाया किंतु सद्गुरुदेव द्वारा दी गई जीवन दान की अंतिम श्वास यहीं पूरी हो चुकी थी। मेरी पहुँच में नहीं है, जो देख कर समझ सकूं कि क्या जीव तत्व को ब्रह्म बनाने की प्रक्रिया को इसी जन्म में विराम मिला अथवा कुछ शेष को पूरा करने के लिए, अगला कोई जन्म लेना शेष रहा, उनके लिए।

हाथ जोड़ कर उनकी पत्नि ने गुरुभक्तों की भीड़ से अनुरोध किया, ''कोई भाई रोये या शोक न करें।'' अंतिम संस्कार को ले जाते हुए, भक्तों की भीड़ का स्वर गूंज रहा था, अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल जय जय, सब विधि पूरण मेरे गुरुदेव जय जय .... । अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल जय जय, सब विधि पूरण मेरे गुरुदेव जय जय ..... ।

योगियों को भौतिक शरीर छोड़ने के बाद, तेरह दिनों तक प्रेतात्मा बनकर नहीं रहना पड़ता। उनकी आगे की यात्रा का निर्धारण, कुछ ही क्षणों में हो जाता है। या तो वह जीव तत्व से ब्रह्म बन जाते हैं अथवा किसी ऊँचे लोक को भेज दिया जाता है।

फिलहाल आध्यात्म जगत के आकाश का वह चमकता हुआ सितारा अनेक साधकों के ह्रदयों को शक्ति सम्पन्न करके, अब डूब गया ....!

अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल जय जय, सब विधि पूरण मेरे गुरुदेव जय जय ....

– इति –

आवश्यक सूचना

मार्च अंक के साथ सिद्धयोग पत्रिका का शुल्क (वार्षिक) समाप्त हो रहा है। ग्राहकों को चाहिए कि मार्च तक वार्षिक शुल्क रु. 150/– मनीआर्डर डाक से भेज दें 'सम्पादक सिद्धयोग के नाम से।'

साथ ही कम से कम पाँच नये ग्राहक बनाकर आश्रम की सेवा में योगदान दें।

– आचार्य दासलाल
सम्पादक 'सिद्धयोग'

अलौकिक कृपा की विलक्षण घटना

जिस दम्पत्ति के साथ यह कृपा प्रसंग घटित हुआ, हमारे इन गुरुभाई–बहनों की इच्छा है कि उनके नाम उजागर न किये जाय, अतः उनकी भावना का आदर करते हुए, कृपा प्रसंग काल्पनिक नाम को आधार बनाकर लिखने का प्रयास किया जा रहा है। प्रसंग शत्–प्रतिशत सत्य है। आशा है कि निर्मल मन से इस कृपा प्रसंग को पढ़ने सुनने एवं मनन–चिन्तन करने से साधकों की श्रद्धा में अवश्य ही विकास होगा एवं वे ईश्वरीय कृपा के पात्र बनेंगे। हमारी आन्तरिक भावना तो ऐसी बनी हुई है कि इसे उपन्यास की तरह नहीं, बल्कि मुक्ति दाता ग्रन्थों की तरह पढ़ने, सुनने, मनन एवं चिन्तन करने से अप्रत्याशित अध्यात्मिक प्रगति होगी।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले के एक हमारे गुरुभाई दम्पति हैं जिनका नाम श्री रमेश चन्द्र गुप्ता एवं पत्नी का नाम श्रीमती रमावती गुप्ता है। श्री रमेश चन्द्र गुप्ता जी एस.बी. आई. (स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया) के अधिकारी हैं एवं बहन जी घरेलू कामकाजी महिला है परन्तु स्नातक स्तर तक शिक्षित है। भाई श्री रमेशचन्द्र जी हमारे आराध्यदेव योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से ही दीक्षित हैं। हमारे गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने अपने गुरुदेव परम योग योगेश्वर, अखिल ब्रह्माण्ड नायक महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज जिन्हे ''श्री प्रभुजी'' के नाम से सम्बोधित किया करते है, के सौवें अवतार दिवस पर उनका स्वजयन्ती अवतारोत्सव सम्भवतः सन् उन्नीस सौ अठारी में अवर्णनीय उमंग एवं उत्साह के साथ मनाया था। उन दिनों रमेश चन्द्र गुप्ता जी स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया में कर्मचारी के पद पर उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों में ही कार्यरत थे एवं श्रीमति रमावती जी के साथ उनका विवाह हुए अभी एक वर्ष ही हुए थे। उस समय हमारे गुरुभाई श्री रमेश चन्द्र जी की पोस्टिंग मेरठ शहर की ही एस.बी.आई. की एक ब्रान्च में थी एवं वे सपत्निक किराये के मकान में रहते थे। श्री गुरुणानुरागी भाई रमेश चन्द्र जी योगेश्वर द्वय का स्वरूप अपने क्वाटर पर विराजमान किये थे। प्रातः सायं नित्य नियम से आरती पूजन किया करते थे। प्रातःकाल जप के साथ ध्यानाभ्यास भी किया करते थे, नई–नई शादी हुई थी और केवल यह दम्पत्ति ही अकेले उस क्वाटर में रहते थे अतः भाई जी आराध्यदेव की कृपाओं का वर्णन अपनी धर्मपरायणा पत्नि से प्रायः किया करते थे। पति–पत्नी के इस सत्संग का प्रभाव इनकी पत्नी पर पड़ा एवं योगेश्वर द्वय के प्रति उसकी श्रद्धा एवं विश्वास में उत्तरोत्तर वृद्धि हो गयी। अब हम आपका ध्यान इस कृपा प्रसंग की तरफ आकृष्ट करना चाहते हैं जो निम्न प्रकार है –

आराध्यदेव महाप्रभु का स्वर्ण जयन्ती महोत्सव कार्यक्रम एवं उसमें उपस्थित होने का आमन्त्रण पत्र पहले ही हमारे सभी गुरुभाई–बहनों को नौमी महोत्सव से दस–पन्द्रह दिन पूर्व ही मिल गया। हमारे आदरणीय भाई ने अपनी धर्म परायणा पत्नी से महाप्रभु जी के स्वर्ण जयन्ती

महोत्सव में भाग लेने के लिए परामर्श किया एवं दोनों की सहमति बन गयी। बैंक की नौकरी में छुट्टी प्राय: कम ही मिलती है। अत: यह सहमति बनी की चैत्र सुदी अष्टमी की तिथि को चलेंगे एवं दशमी को सब काल या चैत्र सुदी एकादशी को मेरठ शहर में प्रात:काल पहुंच जायेंगे। ये दम्पति चैत्र सुदी अष्टमी को प्रात:काल योगेश्वर द्वय का आरती पूजन किये, एवं फल–दूध का नाश्ता कर सिद्ध सेवित श्री सिद्धगुफा की यात्रा प्रात: सात बजे आरम्भ किये ये गुरुभाई सायंकाल साढ़े पाँच बजे आगरा बिजलीघर बस स्टेशन पहुँच गये। उस समय फिरोजाबाद की तरफ वाली बस स्टैण्ड पर मात्र एक बस थी। साथ ही उस तरफ जाने वाले यात्रियों की संख्या लगभग सौ थी। करीब सत्तर सवारिया बस में खड़ी तथा बैठी थी एवं तीस सवारियां बस के पास ही खड़ी थीं की जब बस चले तो उस पर सवार हुआ जाय। बस के कन्डक्टर एवं ड्राइवर बस ले जाने की नीयत से बस के पास दो बार आये एवं कुछ सवारियों के बस से नीचे उतरकर दूसरी बस से यात्रा करने का परामर्श दिये परन्तु उनकी बात को किसी ने नहीं माना। अत: बस स्टेशन के कार्यालय में जाकर बैठ गये। साढ़े पाँच बजे जाने वाली बस छ: बजे तक नही गयी। इसी बीच सभी के पास नीचे खड़े सवारियों ने आपस में परामर्श किया एवं सभी स्टेशन अधीक्षक के पास जाकर निवेदन किया कि एक घण्टे से आगरा–फिरोजाबाद रूट पर कोई बस नहीं गयी एवं सभी सवारियां बस का इन्तजार कर रही है। स्टेशन अधीक्षक को पता चला कि साढ़े पांच बजे तक जाने वाली बस नही गयी है तो उसने उस बस ड्राइवर एवं कनडक्टर को अपने कमरे में बुलाकर अब तक बस न जाने का कारण जाना। स्टेशन अधीक्षक के सामने विकट समस्या पैदा हो गई। बस के कन्डक्टर एवं ड्राइवर कह रहे थे कि पचास सवारी की सीट वाली बस पर हम लोग सौ सवारियां लेकर नही जायेंगे। दूसरी तरफ उस पर यात्रा करने वाली सवारियां कह रही थी कि बस के आसरे ही हम बस स्टेशन पर बने रहे, अब इस समय कहा जाय। ड्राइवर एवं कन्डक्टर को स्टेशन अधीक्षक ने समझाया कि सभी लोकल सवारियां हैं एवं सबको घर जाना आवश्यक है अत: आप दोनों किसी प्रकार से सवारियों को उनके गन्तव्य तक पहुँचाने का प्रबन्ध करें।

स्टेशन अधीक्षक की बात मानकर, उस बस के कन्डक्टर एवं ड्राइवर उस बस की सवारियों से कहे कि बस में बैठी हुई एवं खड़ी सब सवारियां बस के नीचे उतर जायें उसके बाद हम लोगों के निर्देश में जिस प्रकार कह रहे हैं, उस प्रकार यदि सभी करेंगे तो सब अपने घरों को पहुंच जायेंगे। जब सब की सब सवारियां नीचे उतर गयीं तो ड्राइवर व कन्डक्टर ने अपने हिसाब से सवारी बैठाना आरम्भ किया। सबसे पहले गोद में बच्चे को लेने वाली महिलाओं को बैठाया गया उसके बाद महिलाओं को बैठाया गया एवं बैठने वाली सभी सीटें भर गयीं। बस के दोनों तरफ की सीटों के बीच की गैलरी में पुरुष सवारियों को इस प्रकार खड़ा किया गया उनका मुख बस की सीटों की तरफ हो तथा दो–दो सवारियों की पीठ आपस में अच्छी प्रकार सटी हुई हो। अब जो सवारिया बस के नीचे थीं उन्हें बस में बुलाया एवं बस इन्जन के बोनट पर बैठाकर

बस की यात्रा आरम्भ हुई। इस प्रकार बैठाने के कारण आदरणीय गुप्ता जी बस के आगे वाले भाग में खड़े थे एवं उनकी पत्नी बस के पिछले हिस्से में बस की सीट पर बैठी हुई थी। बस में सवार होने से श्री गुप्ता जी ने अपने धर्म परायणा पत्नी को यह समझा दिया था कि बस स्टेशन से बस चलने के बाद बस का पहला स्टेशन एत्मादपुर ही है। जहां से उतर कर योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा जाना है, जहाँ अपना आश्रम है। साथ ही यह भी खूब अच्छी प्रकार समझा दिया था कि एत्मादपुर में मेन जी.टी. रोड पर दोनों तरफ दो–दो बड़े–बड़े बोर्ड श्री गुरुदेव भगवान ने नवागन्तुक योग जिज्ञासुओं एवं साधकों का मार्ग दर्शन के लिए लगवा दिये हैं। जिस पर लगभग चार इंच की मोटी चौड़ाई में लिखा है, योग प्रशिक्षण केन्द्र, 'श्री सिद्ध गुफा सवाँई (आगरा)।' उसी स्थान पर उतर कर अपने आश्रम चलना है। बस आगरा के बस स्टैन्ड से आगे की यात्रा आरम्भ की। सुधी साधकों को एवं अपने नवागन्तुक योग साधकों को यह बताना प्रासंगिक होगा कि आगरा से फिरोजाबाद की तरफ आने वाली मेल बस का पहला स्टापेज एत्मादपुर है परन्तु लोकल एवं पैसेंजर बस के लिए एत्मादपुर सातवां स्टेशन है।

जैसा कि ऊपर वर्णित है कि इस बस में लगभग एक सौ यात्री सवार थे, उसमें से ज्यादे लोकल सवारी थी अतः यह मेल बस सभी लोकल पैसेंजर बस के स्टापेज पर रुकते हुए चल रही थी। आगरा जनपद की शहरी सीमा से आगे बढ़ने पर, बस एक स्टापेज पर रुकी। बस के कन्डक्टर ने बस के रुकने पर आवाज लगाई के अमुक स्टोपेज के पैसेंजर यहां उतर जायें। आदरणीय बहन जी ने समझा कि उनका स्टापेज आ गया। अतः वह उस स्टापेज पर उतर गई। बस चौराहे वाले स्टापेज पर रुकी थी, वहीं पर एक लाइन होटल था और उस लाइन होटल की संचालिका एक बदचलन महिला थी। स्टापेज पर सवारी उतार कर बस आगे की यात्रा आरम्भ की। इस पहले सटापेज पर उतर कर श्रीमती गुप्ता जी ने यह सोचकर की उनके पतिदेव भी इसी स्टापेज पर उतरे होंगे, उन्हें ढूढना आरम्भ किया। उसने खूब अच्छी प्रकार देख कर लिया कि इस स्टोपेज पर उतरने वाली सवारियों में उस के पतिदेव नहीं हैं। पढ़ी लिखी स्नातक महिला थी, अतः उनके मन में रंचमात्र भी निराशा या घबराहट नहीं आई।

आज के भारतीय नारी समाज में एक दोष आ गया है। नारी के परिवार का स्टेटस जो उसके स्वभाव, व्यवहार, शिष्टाचार और नम्रता से नापा जाना चाहिए वह महिला वर्ग के खूबसूरती, श्रृंगार, परिधान और शरीर पर पहने गये जेवरातों से आँका जाता है। हमारी मातायें एवं बहनें अपने को खूबसूरत बनाने श्रृंगार करने, महंगे एवं भड़कदार परिधान पहनने एवं बेसकीमती जेवरात पहनने के लिए बाध्य हैं ताकि समाज में उस परिवार का जिसकी वह सदस्यता है, स्टेटस बरकरार रहे। हमारी यह आदरणीय बहन श्रीमती रमावती देवी भी इस रोग से ग्रस्त थी। उन्होंने अपने शादी में सभी जेवरात शरीर पर धारण किये हुए थे, तथा काफी महंगे एवं सुन्दर कपड़े भी पहने हुए थे। उस स्टापेज पर बस से उतरी सभी सवारियाँ अपने–अपने गंतव्य स्थान को चली गयी।

(क्रमशः)

स्वास्थ्य

योग-आसन

पश्चिमोत्तानासन

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ, दोर्भ्यां पदा ग्रहितय गृहीत्वा।।

जानूपरि न्यस्त ललाटदेशो, बसेदिदं पश्चिमोत्तानमाहु:।।

अर्थात् अपने दोनों पैरों को लम्बे भूमि पर फैलाकर दोनों हाथों से फैले हुए दोनों पैरों के अंगूठों को इस प्रकार तनाव के साथ पकड़े कि पैर सिकुड़ने न पायें। उसके बाद अपने मस्तक को दोनों घुटनों के बीच लगा दें। इसी को पश्चिमोत्तान आसन कहते हैं।

करने की विधि – अपने दोनों पैरों को लम्बे फैलाकर व अपने दोनों हाथों को ऊपर की ओर से तनाव के साथ लाकर अपने फैले हुए दोनों पैरों के अंगूठे को इस प्रकार खींचकर पकड़ें कि फैले हुए पैर सिकुड़ न सकें उससे अपना ललाट देश (शिर) दोनों घुटनों के बीच में लगा दें, इसी को पश्चिमोत्तान आसन कहते हैं।

अभ्यास का समय – अपने शरीर के बलाबल को देखकर आधे मिनट या 20 सैकेण्ड से प्रारम्भ करें व प्रतिदिन पाँच या सात सैकण्ड बढ़ाते चले जायें और दो मिनट तक ले जायें। परमार्थ दृष्टि से करने वाले जिज्ञासु साधु लोग अभ्यास बढ़ाकर इसे आधा घण्टा व घण्टा तक बढ़ा सकते हैं।

लाभ –

'इति पश्चिमोत्तानासनाग्रय, पवनं पश्चिम वाहिनं करोति।

उदयं जठरानलस्य कुर्यादुदरे, कार्श्यमरोगता च पुंसाम्।।

अर्थात् यह उत्तमोत्तम पश्चिमोत्तान वायु को पश्चिमवाही करके जठराग्नि को बढ़ाता है, और पेट पतला करता है। पहिले जानुशिरासन में बतलाये लाभ इस आसन के अभ्यास से प्रायः सभी ही प्राप्त होते हैं। वायु को पश्चिमवाही करना कुण्डलनी जागृति का कारण बनता है। स्नायु मण्डल कोमल होकर उत्तमोत्तम रस रक्त का वहन करता है।

● ● ●

गुरु बन्दना

प्रेषक – रुददत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

दोहा

दीन–दयालु सतगुरु, समरथ बन्दीछोड़।
युगल चरण में बन्दना, भाव सहित कर जोड़ि।।

माथे पर श्रीचरण की, सुन्दर रज धारौं।
जाके पुण्य से ताप–त्रय, क्षण ही में टारौं।।

मंगलकरनी पावनी, रज श्री चरणन की।
बड़े भाग्य उस जीव के, जिस के माथ चढ़ी।।

नेत्र उघाड़ै हीय के, निर्मल दृष्टि करै।
दोष निवारै नयन के, जो नयनन में लगै।।

अन्तर्मन के रोग सब, नाशै क्षण ही माहिं।
चूरन चरणन–धूलि का, जो श्रद्धा से खाहिं।।

तीरथ सतगुरु चरण में, जो कोई न्हावै आय।
आधि व्याधि उपाधि सब, चित्त अपने की गँवाय।।

सतगुरु चरणन सा नहीं, तीरथ जग में और
धोवै मन की मैल जो, काटै चित की खौर।।

क्षण में मन निर्मल भया, चरणन के परताप।
माया ममता मिटि गयी, सूझा अपना आप।।

* * *

तीन लोक में प्रकट है, महिमा अगम अकथ।
मनसा पूरणहार है, गुरु पूरा समरथ।।

काम क्रोध की लहर है, प्रबल मोह की धार।
और कोई आधार ना, नाव पड़ी मंझधार।।

आशा तृष्णा भंवर में, डोलै बिन आधार।
गुरु बिन जीवन नाव को, कौन लगावै पार।।

बुद्धि और चतुराई से, पार न पाइ सकै।
क्षण इक में भव पार है, जो गुरु शरण गहै।।

बहुत जनम से जीव यह, ममता मोह आधीन।
सब ही बन्धन काटि करि, निर्भय सतगुरु कीन।।

जो न छुड़ाये सतगुरु, तो फिर कौन छुड़ाय।
दुविधा की जंजीर यह, और से काटी न जाय।।

चरणन की आराधना, सेवा सुमिरण ध्यान।
यह सेवक का धर्म है, याही में कल्याण।।

सुमिरै सतगुरु को सदा, सो सेवक सुख पाय।
चरण कमल गुरुदेव के, नित हिरदै में ध्याय।।

आपाभाव बिसारि करि, गुरु से नेह लगाय।
कबहूं न बिसरै सतगुरु, और सकल बिसराय।।

औरहुं त्यागै आस सब, गुरु चरणन की आस।
सफल जनम जग ताहि का, भाषै दासनदास।।

(आनन्द संदेश से साभार)

गुरु गौरव गीतम्

– द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ

(1)

श्री सद्गुरो! त्वां प्रणमामि देव,
त्वं ज्ञानोरूपोऽसि कृपानिधिस्त्वम्।
त्वमेव साक्षाद भवतारणोऽसि
नतोऽस्म्य हं त्वां शरणं प्रपन्नः।।

भावार्थ – हे देवस्वरूप सद्गुरो! आपको मैं प्रणाम करता हूँ। आप ज्ञान के ही रूप हैं। आप कृपा के निधान हैं। इस संसार सागर के पार करा देने वाले आप ही हैं। मैं आपकी शरण में आ गया हूँ और मैं आपके समक्ष नतमस्तक हूँ।

(2)

शिष्यावयं ते भवदीयशरणाः,
प्रदीक्षिताः स्मो विधिवद् भवद्भिः।
मुग्धास्तवाज्ञां न हि पूरयामः,
दौर्भाग्यमेतन्नन्वस्मदीयम्।।

भावार्थ – हम सब आपके शिष्य हैं और आपकी ही हम शरण में हैं। आपके द्वारा ही हम विधिपूर्वक दीक्षित भी किये गये हैं। परन्तु हम अपनी मूढ़तावश आप द्वारा प्रदत्त आदेश की पूर्ति नहीं कर पा रहे हैं। यह निश्चित रूप से हमारा अपना ही दुर्भाग्य है।

(3)

कृतामवज्ञां निजशिष्य वर्गैः
भवान् कृपासागर एव ख्यातः।
अस्मत् प्रमादं हि स्वभावजन्यं
क्षन्तव्यमेतत् क्षमिणां वरो भवान्।।

भावार्थ – अपने शिष्य वर्ग द्वारा की गई इस अवज्ञा को और उनके इस स्वभावजन्य प्रमादवश अवहेलना को आप ही क्षमा कर देने में समर्थ हैं क्योंकि आपकी ख्याति ''कृपासागर'' के रूप में है और क्षमाकर देने वालों में भी आप सबसे आगे हैं।

(4)

पितासि मातासि त्वमेव नः प्रभो,

नाथोऽसि न एव त्वमेव सर्वम्।

श्रद्धाऽस्मदीया विपुलाऽस्तिविस्तरा,

पात्रा अपात्राः शरणायितास्ते।।

भावार्थ – हे प्रभो! अब आप ही हमारे पिता हैं। आप ही हमारी माता हैं। आप ही हमारे नाथ अथवा रक्षक हैं और तो और , आप ही हमारे सब कुछ हैं। हमारी श्रद्धा आपके प्रति बहुत विस्तृत और बड़ी है। हम चाहे पात्र हैं या अपात्र, परन्तु शरण में बस आपके ही हैं हे प्रभो!

(5)

महर्षिप्रवरेण पतंजलिनोदितं,

यद्योगशास्त्रं भवतोपसेवितम्।

योगं च सकलं वपुषा प्रदर्शितं,

एकैकसूत्रं भवदीय जीवनम्।।

भावार्थ – महर्षिश्रेष्ठ पतंजलि द्वारा प्रमाणित जिस योगशास्त्र का आपने सेवन व अनुशीलन किया है, उस समस्त योग शास्त्र में निहित एक–एक सूत्र को प्रत्यक्षरूप में व क्रियारूप में अपने शरीर द्वारा प्रदर्शित कर दिया है। वह योग दर्शन आप का स्वयं का जीवन ही रहा है।

(6)

अनुग्रहादेव त्वदीय शिष्याः

अल्प प्रयासैरपि लब्धमानाः।

अपात्रवन्तोऽपि सुपात्रताङ्गताः,

माहात्म्यमेतच्चरणारविन्दयोः।।

भावार्थ – आपके शिष्य आपके अनुग्रहमात्र से ही थोड़े से प्रयासों के कारण मान–सम्मान के योग्य हो गये हैं। वे अपात्र होकर भी सुपात्रता की कोटि में आ चुके हैं। भगवन्! यह केवल आपके चरणारविन्दों का ही तो सुप्रभाव एवं माहात्म्य ही है।

(7)

किमस्ति वाच्यो विषये गुरोर्नः

स्वयमेव यस्यास्ति सदाशिवो गुरुः।

योगावतारो जनतापहारः

श्री रामलालश्चतुरक्षरालङ्कृतः।।

भावार्थ – हमारे अपने सद्गुरु के विषय में क्या कहने योग्य रह जाता है, जब उनके गुरुदेव स्वयं ही सदाशिव रहे हों। वे तो योग–विद्या के अवतार रूप में और जनता–जनार्दन के

भवजनित ताप के हारक के रूप में ही अवतरित हो आये थे। चार अक्षरों से अलंकृत अथवा विभूषित उनका नाम है – महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज।

(8)

गुरुरस्मदी योऽप्यमंस्त सद्गुरुम्,

साक्षात् प्रभुः सर्वसमर्थ एव।

मनोवाक् क्रियाभिः स समर्पयत् तं,

लेभे यतः स गुरुतां महत्तमाम्।।

भावार्थ – हमारे सद्गुरुदेव ने अपने आराध्य गुरुदेव को साक्षात् प्रभु एवं सर्वसमर्थ रूप में स्वीकार करते हुए विश्वास सहित माना। उन्होंने मनसा, वाचा तथा कर्मणा सब प्रकार से अपने को गुरुदेव के प्रति समर्पित किया और इसी कारण उन्होंने स्वयं भी महत्तम गुरुता की कोटि में अपना स्थान बनाया।

(9)

आज्ञां शिरोधार्य सदैव सद्गुरोः,

चकार तत्तत् यद्यत् प्रभाषितम्।

श्री सद्गुरुणां वचनानि तेषाम्,

मन्त्रस्वरूपाणि बभूवुरस्य।।

भावार्थ – सदा ही अपने सद्गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य रूप में स्वीकार करते हुए और जो कुछ उन्होंने कहा, उसको वैसे ही किया। उनके लिए सद्गुरुदेव के वचन मात्र वचन न होकर मंत्रस्वरूप व पालनीय रूप में रहे।

(10)

श्रद्धातिरेकेण तथोपसेवितः

श्रीसद्गुरुर्येन सदैव सर्वथा।

सैवास्ति श्रद्धा फलिता प्रकाशिता,

भूत्वा भवान् श्री भगवान् गुरुर्नः।।

भावार्थ – जिन्होंने अतिशय श्रद्धा के भाव से अपने सद्गुरुदेव की सदैव सब प्रकार से सेवा की है और उनकी वही श्रद्धा फलित और प्रकाशित भी हुई है। वे स्वयं हमारे सद्गुरुदेव और श्री भगवान होकर प्रकट हुए।

(11)

गुरुर्यदा स्वाः सकला विभूतीः,

प्रेष्ठं स्वशिष्यं परिवीक्ष्य पात्रम्।

सन्तोषमाप्नोति समर्थ्य सम्यक्,
रूपायते तस्मिन्नेव सद्गुरुः।।

भावार्थ – श्री सद्गुरुदेव जब किसी अपने सुपात्र और प्रिय शिष्य को पा जाते हैं तो वे अपना सकल ऐश्वर्य उसी सुपात्र शिष्य को भली भांति सौंप दिया करते हैं। उन्हें इस प्रकार प्रदान करते हुए अत्यन्त सन्तोष प्राप्त होता है और तो और समर्थ गुरु तो उसी सुपात्र शिष्य में ही अपने रूप को भी समाहित कर देते हैं।

(12)

श्रद्धाऽस्मदीया गुरुपादपद्मयोः
तदैव सार्था फलिता च भविता।
यदा योग मार्गो गुरुणोपदिष्टः
ध्येयः स गेयो विधिवद्विधेयः।।

भावार्थ – श्री सद्गुरुदेव के श्री चरणारविन्दों में हमारी श्रद्धा तभी फलवती व अर्थवती होगी जब श्री सद्गुरुदेव द्वारा उपदिष्ट ही हमारे लिए एकमात्र ध्येय, गेय (गाने योग्य) और विधिपूर्वक (विधेय) करने योग्य हो जायेगा।

जयतु जयतु देवो देविरामात्मजोऽयम्,जयतु जयतु योगी योगिनामग्रण्यः।।
जयतु जयतु चन्द्रमोहनः सद्गुरुर्नः, जयतु जयतु सम्राट् योगिनां रामलालः।।

● ● ●

शोक संवेदना

बड़े दुःख का विषय है कि दिल्ली निवासी आचार्य चन्द्रहास शर्मा का 30 दिसम्बर को कांगड़ा (हिमाचल) में अचानक देहावसान हो गया है। वे वहाँ योग प्रचार कार्यक्रम में गये हुए थे। आचार्य जी श्री गुरुदेव जी के पुराने लाड़ले शिष्यों में से एक थे। वे बड़े ही योगनिष्ठ, कर्मठ एवं मितभाषी साधक थे। गुरुदेव कई बार प्रवचनों में कहा करते थे "हमारा ऐसा साधक बच्चा है बहुत कम बोलता है और साधना में लगा रहता है।" गुरुदेव ने सन् 1979–1980 के कानपुर योग प्रचार कार्यक्रम के दौरान गहरा शक्तिसंचार किया था परिणामस्वरूप इनकी ध्यान की अच्छी स्थिति बन गई थी।

आचार्य चन्द्रहास जी दिल्ली स्थित श्री लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विश्व विद्यालय के शिक्षा शास्त्री (बी.एड.) विभाग में रीडर के पद पर रहे वहीं से सेवानिवृत्त हुए। सेवानिवृत्ति के पश्चात् उन्होंने अपना जीवन योग प्रचार में लगा दिया। काँगड़ा, कानपुर, कालपी और झाँसी इनका प्रचार क्षेत्र रहा है। इस समय वे 73–74 वर्ष के थे। उनके परिवार में बेटा हिमांशु, विधारण्य तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमति सरिता भारद्वाज है। सिद्धयोग परिवार इस दुःख की बेला में परिवारिजनों को अपना हार्दिक संवेदना प्रेषित करता है। श्री प्रभुजी इन्हे इस महान दुःख को सहन करने की क्षमता दें।

जय गुरुदेव की –

– आचार्य रामलाल, संपादक सिद्धयोग

धारणा-ध्यान-समाधि व तज्जन्य सिद्धियाँ

लेखिका – डॉ. राजकुमारी त्रिखा, जनकपुरी, नई दिल्ली

इस अध्याय में हम योग के अन्तरङ्ग साधनों – धारणा, ध्यान व समाधि की व्याख्या करेंगे। एतद्विषयक सामग्री का विभाजन निम्न शीर्षकों में करेंगे–

क. धारणा

ख. ध्यान व समाधि

ग. धारणा–ध्यान–समाधि–साधनाजन्य सिद्धियाँ

(क) धारणा

बहिरङ्ग योगाङ्गों की साधना द्वारा योगसाधक का चित्त क्षिप्त विक्षिप्त आदि अवस्थाओं से ऊपर उठकर एकाग्रता की ओर अग्रसर होता है। तब चित्त की बहिर्मुखीधारा का अवरोध व अन्तर्मुखी धारा का विकास होने लगता है तथा साधक का चित्त धारणा, ध्यान आदि उच्च साधनों के योग्य बनता है।

धारणा का शाब्दिक अर्थ है, सम्भालना, टिकाये रखना, सहारा देना, धारण करना, सुरक्षित रखना, धारणात्मक अर्थात् स्मरणात्मक शक्ति। धृ, धारणे, में णिच्, युच् व टाप् लगाने पर धारणा शब्द बनता है।

सुविधा की दृष्टि से धारणाविषयक विवेचन दो भागों में विभाजित किया गया है।

(1) पातञ्जल योगसूत्र व महाभारत में धारणा विवेचन

(2) धारणा–लक्ष्यों का प्रतिपादन

(1) पातञ्जल योगसूत्र व महाभारत में धारणा–विवेचन

योग दर्शन में धारणा शब्द का अर्थ है, 'किसी लक्ष्य–विशेष में चित्त को स्थिर करना। चित्त को समस्त विषयों से हटाकर किसी एक लक्ष्य में स्थापित करना धारणा है। यह धारणा ही योग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सोपान है। इसी से मनुष्य का सर्वाधिक मन एकाग्र होना प्रारम्भ होता है। मन में मनन करने की उच्चस्तरीय योग्यता प्रकट होती है, मानसिक बल बढ़ता है, व साधक, धारणा के परिपक्व होने पर ध्यान तथा ध्यान के परिपक्व होने पर समाधि की ओर अग्रसर हो जाता है।

मुनि पतञ्जलि ने धारणा के लक्ष्य स्पष्ट रूप से नहीं गिनाये हैं, परन्तु व्यास–भाष्य में नाभिचक्र, हृदयकमल, मूर्धाज्योति, नासिका का अग्रभाग आदि शरीरस्थ आन्तरिक स्थान अथवा बाह्यविषयों में चित्त को एकाग्र करने को धारणा कहा गया है। प्रकारान्तर से महर्षि पतञ्जलि ने इन्द्रियजय व भूतजय की साधना व संयम के उल्लेख द्वारा पंचमहाभूतों की धारणा

को भी स्वीकार किया है।

इसी प्रकार वीतरागी महापुरुषों के ध्यान का भी विधान पातञ्जल योग सूत्र में किया गया है।

(2) महाभारत में धारणा के लक्ष्यों का प्रतिपादन

महाभारत में धारणा के अनेक प्रकार के लक्ष्यों का वर्णन किया गया है यथा शरीर के विविध अंग, पंचमहाभूत तथा उनकी तन्मात्राएँ।

शरीर के अंगों की धारणा –

महाभारत में शरीर के भीतर ही किसी अंग अथवा स्थानविशेष पर चित्त को केन्द्रित करने का अनेकश: विधान किया गया है। आश्वमेधिक पर्व के अनुगीतापर्व में धारणा के अनेक लक्ष्यों का उल्लेख है। भगवान श्रीकृष्ण उपदेश देते हैं, 'जो उपदेश पहले श्रुति में देखा गया है, साधक उसका चिन्तन करके जिस भाग में जीव का निवास माना गया है, उसी में मन को भी स्थापित करे, उसके बाहर कदापि न जाने दे। शरीर के भीतर रहते हुए वह आत्मा जिस आश्रय में स्थित होता है, उसी में बाह्य व आभ्यन्तर विषयों सहित मन को धारण करे। किसी चक्र (मूलाधार चक्र आदि) आदि आश्रय में चिन्तन करके, जब वह सर्वस्वरूप (परमात्मा) का साक्षात्कार करता है, उस समय उसका मन (प्रत्यक्स्वरूप परमात्मा से) भिन्न कोई बाहरी वस्तु नहीं रहता। निर्जन वन में इन्द्रियसमूह को वश में कर, एकाग्रचित्त हो, शब्दशून्य होकर अपने शरीर के भीतर परब्रह्म परमात्मा का चिन्तन करे। दन्त, तालु, जिव्हा, गला, ग्रीवा, हृदय तथा हृदय के बन्धन,(अर्थात् बाँधने वाले नाड़ी समुदाय) को भी परमात्मा रूप से चिन्तन करे। इन अंगों में धारणा करने का कारण भी इन अंगों में जीव का निवास बताया गया है।

महाराज युधिष्ठिर को योग का उपदेश देते हुए भीष्म पितामह धारणा के अनेक लक्ष्यों का वर्णन करते हैं। उन्होंने, कण्ठ, हृदय इत्यादि पूर्वोक्त लक्ष्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य अंगों को भी धारणा का लक्ष्य बनाने का उपदेश दिया है। वे कहते हैं – 'योग के महान् व्रत में एकाग्रचित्त रहने वाले जो योगी नाभि, कण्ठ, मस्तक, हृदय, वक्षःस्थल, पार्श्वभाग, नेत्र, कान व नासिका, इन स्थानों में धारणा के द्वारा सूक्ष्म आत्मा को परमात्मा के साथ भली भांति संयुक्त करता है, वह इच्छा करे, तो अपने पर्वताकार विशाल शुभाशुभ कर्मों को शीघ्र ही भस्मसात् करके उत्तम योग का आश्रय लेकर मुक्त हो जाता है।'

अन्य अनेक स्थलों पर भी हृदय देश की धारणा का विधान किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि हृदय की धारणा महाभारतकार को अधिक अभिप्रेत थी। प्राय: हृदय में जीवात्मा का निवास माना गया है। हृदय शरीर का मर्मस्थान व महत्वपूर्ण स्थान है। इसी कारण से हृदय देश की धारणा भी अधिक लोकप्रिय रही होगी। सम्भवत: यह धारणा कुछ यत्नसाध्य भी होती होगी, क्योंकि एक स्थान पर कहा गया है, 'साधक यदि हृदयधारणा न कर सके, तो योग का आश्रय लेकर सांख्यशास्त्रानुसार (पच्चीस तत्वों के चिन्तनपूर्वक) उपासना करे।'

मूर्धा को धारणा का लक्ष्य बनाने का आदेश भी अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है। एक स्थान पर भगवान कृष्ण ने नासिका के अग्रभाग पर धारणा करने का सुझाव भी दिया है।

बाह्यविषयों की धारणा

महाभारत में शरीर के बाहर दृश्यमान अनेक विषयों का भी धारणा के लक्ष्यों के रूप में परिगणन किया गया है। पतंजलि मुनि द्वारा निर्दिष्ट-वीतरागी पुरुषों के ध्यान के सिद्धान्त की प्रतिध्वनि महाभारत में भी मिलती है। वहाँ भी जीवन्मुक्त महर्षियों की धारणा का वर्णन किया गया है। भीष्म पितामह कहते हैं "ब्रह्मप्राप्ति क्रियात्मक यत्नों से साध्य नहीं है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए देवताओं सहित सम्पूर्ण जगत को, तथा तुमको भी, उन पुरुषों की उपासना करनी चाहिए, जो जीवन्मुक्त हैं। अतः मैं महर्षि समूह को प्रणाम करता हूँ।"

महाभारत में पंचमहाभूत, बुद्धि तथा अहंकार सम्बन्धी सात धारणाओं तथा इनके विषयों की प्रधारणाओं का भी विधान किया गया है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, बुद्धि तथा अहंकार पर चित्त एकाग्र करना ही उनकी धारणा शब्द से अभिहित किया गया है तथा इनके विषयों – गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, निश्चय तथा अहंवृत्ति पर चित्त एकाग्र करना प्रधारणा कहा गया है। जब साधक धारणा का अभ्यास करता है तब अभ्यास परिपक्व होने पर सर्वप्रथम ध्यान में पंचमहाभूतों का दर्शन होता है। पतंजलि ने इसे वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि कहा है। निरन्तर अभ्यास द्वारा धारणा अधिकाधिक पुष्ट होती जाती है तथा स्थूल दर्शन से सूक्ष्मदर्शन की यात्रा प्रारम्भ होती है। अभिप्राय यह है कि पंचमहाभूतों के स्थूल दर्शन के पश्चात् उनके कारणभूत उनकी तन्मात्राओं का साक्षात्कार होता है। इस स्थिति को पातंजल योग–दर्शन में विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि कहा है, जबकि महाभारत में इसे प्रधारणा कहा गया है। स्थूल पंचमहाभूतों की धारणा के पश्चात ही पंचतन्मात्राओं की प्रधारणा होती है अतः महाभारत में कहा गया है कि प्रधारणाएँ धारणाओं के पीछे–पीछे स्वतः आती हैं (पृष्ठतः) व पार्श्ववर्तिनी हैं, अर्थात् शीघ्र ही यह अवस्था आती है।

(ख) ध्यान व समाधि

जब साधना द्वारा ध्येय विषय पर चित्त एकाग्र करने का प्रयास किया जाता है तो प्रारम्भ में मन लक्ष्य से भटक जाता है। बार–बार मन को धारणालक्ष्य पर वापिस लाना पड़ता है। धीरे–धीरे अभ्यास द्वारा मन धारणा के लक्ष्य पर एकाग्र होने लगता है। जब चित्त वृत्ति अखण्डरूप से अपने लक्ष्य पर टिकी रहे, तो उस कोटि की एकाग्रता को ध्यान कहते हैं। पतंजलि कहते हैं – ध्येय वस्तु में चित्तवृत्ति की एकतानता ही ध्यान है।

ध्यानावस्था में चित्त ध्येय विषय में इतना तल्लीन हो जाता है कि चित्त में कोई अन्यविषयकवृत्ति उदित नहीं होती। धारणा के अभ्यासकाल में चित्त अपेक्षाकृत कम एकाग्र होता है तथा ध्येय विषय के अतिरिक्त अन्य- विषय–सम्बन्धी वृत्तियाँ भी चित्त में उदित होती रहती हैं। ध्येयाकारवृत्ति निरन्तर नहीं बनी रहती। किन्तु जब धारणा के अभ्यास से चित्तवृत्ति की

एकाग्रता प्रगाढ़तर व अपेक्षाकृत अधिककाल तक स्थिर रहे, तो उसे ध्यान कहते हैं। स्वामी हरिहरानन्द आरण्यक ध्यान की विशद व्याख्या करते हुए कहते हैं – जब तेल की अखण्ड धारा के समान चित्तवृत्ति, अपने ध्येयविषय पर ही निरन्तर एकाग्र रहे, तब उसे ध्यान कहते हैं।

कहने का अभिप्राय यह है कि धारणा तथा ध्यान में चित्तवृत्ति की एकाग्रता की प्रगाढ़ता व काल–सीमा का अन्तर है। योगसूत्र के टीकाकार विज्ञानभिक्षु कहते हैं कि धारणा कम से कम द्वादश प्राणायामों के काल से अविच्छिन्न होनी आवश्यक है। अर्थात् इससे कम समय तक चलने वाला देशबन्ध धारणा नहीं माना जाता।

साधक की साधना में प्रगति के साथ–साथ धारणा का काल बढ़ता जाता है तथा चित्त ध्यान के योग्य बनता है। जब चित्त की ध्येयाकार वृत्ति धारणा से बारह गुणा कालपर्यन्त अखण्डरूप से बनी रहे, तो उसे ध्यान कहते हैं।

दीर्घ व निरन्तर ध्यानाभ्यास से, चित्त की एकाग्रता निरन्तर बढ़ती जाती है तथा ध्यान ही अर्थमात्र से भासता है व स्वरूप से शून्य सा हो जाता है। तब उसी प्रत्ययैकतानता रूप ध्यान को समाधि कहते हैं, जो योग का आठवाँ व अन्तिम सोपान है। ध्यान में ध्याता ध्येय व ध्यान, इन तीनों की प्रतीति होती है, जबकि समाधि में केवल ध्येय की ही प्रतीति होती है। इसे ही अर्थमात्र से निर्भासित होना कहते हैं। पतंजलि समाधि की परिभाषा देते हुए कहते हैं – जब ध्यान की एकतानता में केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीति होती रहे, ध्याता व ध्यान की नहीं, तब ध्यान की उस अवस्था को ही समाधि कहते हैं।

पातंजल योग दर्शन में समाधि के दो प्रमुख भेद किये गये हैं सम्प्रज्ञात समाधि, तथा असम्प्रज्ञात समाधि। सम्प्रज्ञात समाधि को सबीज समाधि तथा असम्प्रज्ञात समाधि को निर्बीज समाधि भी कहते हैं, क्योंकि सम्प्रज्ञात समाधि में ध्याता ध्येय व ध्यान में से किसी न किसी का अवलम्बन रहता है। असम्प्रज्ञात में कोई अवलम्बन नहीं रहता।

पतंजलि चार प्रकार की सम्प्रज्ञात समाधि मानते हैं, वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत तथा अस्मितानुगत।

वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि में ध्यान का विषय स्थूल पंचमहाभूत, अथवा तज्जन्य स्थूल पदार्थ, भगवान की प्रतिमा आदि होते हैं। यह भी एकाग्रता की निम्न व उच्चअवस्था के भेद से दो प्रकार की है – सवितर्क व निर्वितर्क। सवितर्क में पंचमहाभूतों का पूर्वापरक्रम तथा दृश्यमान महाभूत के गुणधर्म की स्मृति बनी रहती है। जब दृश्यमान (ध्यानान्तर्गत) महाभूत या पदार्थ मात्र ही दिखता रहे, उसके गुणधर्म या पूर्वापरभाव की स्मृति न रहे, वह निर्वितर्क सम्प्रज्ञात समाधि है।

जब स्थूल पंचमहाभूतों के कारण भूत पंचतन्मात्राओं का समाधि में साक्षात्कार होता है तो उसे विचारानुगत समाधि कहते हैं। यह भी एकाग्रता की न्यूनाधिकता की दृष्टि से क्रमशः सविचार व निर्विचार भेद से दो प्रकार की है। तन्मात्राओं का गुणधर्म सहित तथा देश काल व

निमित्त के सजगतापूर्वक जो ज्ञान अथवा समाधि में दर्शन होता है, उस अवस्था को सविचारसम्प्रज्ञात कहते हैं। जब पंचतन्मात्राओं का ही केवल दर्शन होता रहे तथा उनके पौर्वापर्य अथवा गुणधर्मों की स्मृति न रहे, तो उसे निर्विचार सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं।

रजोगुण व तमोगुण का ह्रास होते जाने व सतोगुण के बढ़ते जाने से, साधक में और भी अधिकाधिक सूक्ष्म तत्वों का साक्षात्कार करने की क्षमता आ जाती है। फिर साधक को अहंकार का साक्षात्कार होता है। अतिशय आनन्द की प्राप्ति होती है। यह आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि है। इसमें केवल 'अस्मि' ही शेष बचता है। इसे अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं।

(क्रमशः)

● ● ●

सिद्धयोग मासिक (पत्रिका) का विवरण

फार्म नं. 4

1. प्रकाशन का स्थान	—	श्री सिद्धगुफा, संवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)
2. प्रकाशन का अवधि क्रम	—	मासिक
3. मुद्रक का नाम	—	दासलाल शर्मा
राष्ट्रीयता	—	भारतीय
पता	—	श्री सिद्धगुफा संवाई, आगरा (उ.प्र.)
4. प्रकाशक का नाम	—	दासलाल शर्मा
राष्ट्रीयता	—	भारतीय
पता	—	श्री सिद्धगुफा संवाई, आगरा (उ.प्र.)
5. सम्पादक का नाम	—	दासलाल शर्मा
6. स्वत्वाधिकारी	—	दासलाल शर्मा

मैं दासलाल शर्मा एतद् द्वारा यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य है।

30 जनवरी, 2013

दासलाल शर्मा

कृते, सिद्धगुफा प्रकाशन, सवांई (एत्मादपुर), आगरा

अष्टांग योग साधना (बहिरंग)

– प्रो. ऋषिराम शर्मा

(गतांक से आगे)

अर्थात् संसार के रूप में जितनी भी स्थूल तथा सूक्ष्म योनियाँ हैं वह सभी जीव अपने कर्मसंस्कारों के कारण प्राप्त करते हैं और यही कर्माशय के कर्मसंस्कार तथा चित्त में संचित अनन्त मानसिक वासनाओं के फलस्वरूप मृत्यु के बाद भी देहान्तरप्राप्ति की प्रक्रिया जारी रहती है। परमार्थतः जीव माया द्वारा आत्मा पर विकल्पित भाव है और ईश्वर मायाधीश आत्मा है। दोनों भावों को प्रकृतिरूपी वृक्ष पर आश्रित दो पक्षियों के रूप में दर्शाया गया है। जीवरूपी पक्षी विषयभोगरूपी मायारूपी वृक्ष के विषैले फल खाने में व्यस्त है और ईश्वररूपी पक्षी फल न खाकर केवल साक्षी रूप में अपने सर्वज्ञ स्वरूप में इस मायारूपी वृक्ष का सर्वव्यापी नियन्ता है। जीवरूपी पक्षी फलों के विष से अल्पज्ञ, असमर्थ तथा भ्रान्तिमोहित होकर दुःखी है। जब कभी गुरुकृपा से अपने साथी पक्षी ईश्वर के महिमामय आनन्दस्वरूप को देख लेता है तब वह भी शोकरहित होकर वैसा ही स्वरूप ग्रहण कर लेता है। ईश्वर का स्वरूप देखते ही माया की भ्रान्ति तथा कल्पित द्वैतसृष्टि स्वतः नष्ट हो जाती है, क्योंकि उपनिषद् इसकी पुष्टि करते हैं।

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते सर्वकर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

(मुण्डक उप. 2/8)

अर्थात् ईश्वरदर्शन के बाद अस्मिता क्लेश नष्ट हो जाता है, अविद्या क्लेश के क्षीण होने से भ्रान्तिज्ञान समाप्त हो जाता है और अज्ञान से संचित कर्माशय भी नष्ट हो जाता है। इसी को अशुद्धि का नाश कहते हैं। इसमें अष्टांगयोग का विशेष योगदान है। महर्षि पतंजलि ने इसे परिभाषित किया है कि –

यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहारधारणाध्यान समाधियः अष्टांगानि।।

(योगदर्शन 2/29)

अर्थात् अष्टांगयोग के आठ अंग हैं। वह हैं (1) यम, (2) नियम, (3) आसन, (4) प्राणायाम, (5) प्रत्याहार, (6) धारणा, (7) ध्यान, (8) समाधि। इनमें प्रथम पांच अंग बहिरंग कहलाते हैं तथा अंतिम तीन अंग अन्तरंग कहलाते हैं। बहिरंग साधन शारीरिक तप हैं तथा इनका उद्देश्य अन्तरंग साधन के लिए योग्यता प्राप्त करना है, जबकि अन्तरंग साधन मानसिक तप है और इनका उद्देश्य चित्त की अशुद्धि का नाश कर ईश्वरदर्शन की योग्यता प्राप्त करना है। अन्तरंग साधन की सिद्धि को ''संयम'' कहा गया है जिस पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद –

"तज्जयात् प्रज्ञालोक:" (योगदर्शन 3/5)

अर्थात् प्रज्ञा की दिव्य भूमिकाओं में प्रवेश हो जाता है। प्रज्ञा की सात भूमिकायें हैं और अन्तिम भूमिका "ऋतम्भरा प्रज्ञा" है जोकि परमात्मदर्शन के लिए उत्तरदायी है।

योगसिद्धि में सबसे बड़ा अवरोध है चित्त की अयोग्यता। इसके लिए बहिरंग साधनों की परिपक्वता अत्यावश्यक है। अत: हम इन पर दृष्टि डालेंगे। पहला साधन है यम। यम का अर्थ है उन बाह्य वृत्तियों पर नियन्त्रण करना जो चित्त में मन तथा बुद्धि के माध्यम से प्रवेश करती हैं तथा उस पर अपना अशुद्धि का आवरण डालती है। इसकी परिभाषा है कि –

"अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा: यमा:" ।।

(योगदर्शन 2/30)

अर्थात् यम के पाँच अंग हैं। (1) अहिंसा, (2) सत्य, (3) अस्तेय, (4) ब्रह्मचर्य तथा (5) अपरिग्रह। अहिंसा का अर्थ है कि अपने व्यवहार से किसी भी प्राणी को शारीरिक अथवा मानसिक वेदना न देना। इस व्यवहार में वही कर्म आते हैं जो अहंबुद्धि से जुड़े हैं क्योंकि अनजाने में अनायास किया गया व्यवहार कर्म ही नहीं है। भगवान श्रीकृष्ण ने इसे स्पष्ट कर दिया है कि –

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
स हत्वापि इमान् लोकान् न हन्ति न हन्यते।।

अर्थात् जिस कर्म में अहंकारबुद्धि नहीं है और न बुद्धि पर उसका कोई प्रभाव है, वह अकर्म है। सर्वत्र समबुद्धि से लोकहित में निरासक्त भाव से किया गया व्यवहार इस परिभाषा में आता है। दूसरा यम सत्य है। सत्य का अर्थ है किसी भी घटना या विषय का यथार्थ तथा निष्कपट भाव से वर्णन करना। स्वार्थबुद्धि से यथार्थ में परिवर्तन कर बोलना सत्य नहीं है। सत्य के विषय में भगवान श्रीकृष्ण का संदेश है कि –

सत्यं ब्रुयात् प्रियं ब्रुयात् न ब्रुयात् सत्यमप्रियम्।।

अर्थात् सत्य बोलना चाहिए, प्रिय बोलना चाहिए किन्तु जो सत्य सुनने वाले के लिए अप्रिय हो, उसे नहीं बोलना चाहिए। सत्यपालन में भी अहिंसा का पालन होना चाहिए। सत्यवादी व्यक्ति को नि:स्वार्थी, निष्कपट तथा अहिंसक होना चाहिए। योग सत्य को जानने की विद्या है अत: जो सत्यवादी नहीं है वह योगी नहीं बन सकता है। आत्मज्ञान के लिए सत्य को धारण करना परमावश्यक है, क्योंकि वेदवाणी का कथन है कि –

सत्येन लभ्य: एष: आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्त:शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्र: तं पश्यन्ति यतय: क्षीणदोषा:।।

अर्थात् आत्मतत्व का ज्ञान सत्य, विवेकख्याति तथा ब्रह्मचर्य के पालन से ही सम्भव है, क्योंकि शरीर के अन्दर विशुद्ध चित्त में ही सिद्धयोगी महापुरुष अपने शुद्ध ज्योतिस्वरूप आत्मा

का साक्षात्कार कर सकते हैं, अन्यथा कोई उपाय नहीं है।

तीसरा यम अस्तेय है। अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना, यानि किसी अन्य जीव द्वारा अर्जित धन, सम्पत्ति, विद्या, मान–प्रतिष्ठा का उसकी आज्ञा के बिना अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए लाभ न उठाना। अपने स्वार्थलाभ के लिए किसी भी प्रकार का षड्यन्त्र अथवा कपटव्यवहार न करना अस्तेय है।

चौथा यम ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य का अर्थ किसी भी प्रकार की कामवासना की चित्तवृत्ति का उदय न होने देना ब्रह्मचर्य है। कामवासना का तात्पर्य है कि कामसुख की इच्छा से प्रेरित होकर मन से अथवा शरीर से सम्भोग के लिए प्रेरित होना या उसका चिन्तन करना ब्रह्मचर्य का उल्लंघन है। सन्तानोत्पत्ति के उद्देश्य से धर्मानुकूल सम्भोग उल्लंघन नहीं है, क्योंकि भगवान श्रीकृष्ण का कथन है कि –

धर्माविरुद्धो हि भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।।

अर्थात् हे अर्जुन! धर्मानुकूल काम सृष्टिरचना के रूप में परमात्मा की इच्छामात्र है अतः ब्रह्मचर्य का उल्लंघन नहीं है। यदि उसके पीछे शारीरिक तथा मानसिक इन्द्रियसुख की प्राप्ति–भावना है तब वह ब्रह्मचर्यवृत्त का उल्लंघन है।

पाँचवां यम अपरिग्रह है। जब अपनी अथवा अपनों की सुख सुविधा के लिए सामग्री एकत्र की जाती है और उसमें आसक्ति होने के कारण उसकी रक्षा की चिन्ता बनी रहती है तब उसे परिग्रह कहते हैं। इस परिग्रह की भावना का चित्त में अभाव हो जाना अपरिग्रह है। चित्त की शुद्धि के लिए यम के सभी अंगों का यथावत पालन आवश्यक है, क्योंकि इनका उल्लंघन ही चित्त की अशुद्धि है।

अब हम नियमों पर प्रकाश डालेंगे, नियम भी पाँच हैं।

शौचसन्तोषतपस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।।

(योगदर्शन 2/32)

पाँच नियम हैं (1) शौच, (2) सन्तोष, (3) तप, (4) स्वाध्याय तथा (5) ईश्वरप्रणिधान। यमों की भाँति नियमों का भी उद्देश्य चित्त का शुद्धिकरण ही है। शौच का अर्थ है शरीर तथा मन की शुद्धि। इस शुद्धि के बिना न तो धर्म के नियमों का पालन हो सकता है और न किसी भी प्रकार की साधना। शास्त्र का कथन है कि –

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।।

अर्थात् किसी भी धर्म का यथोचित पालन करने के लिए स्वस्थ शरीर की आवश्यकता होती है, स्वस्थ शरीर के लिए आधि–व्याधियों से मुक्ति चाहिए जिसके लिए शरीर तथा मन को शुद्ध रखना अत्यावश्यक है।

दूसरा नियम सन्तोष है। सन्तोष का अर्थ है कि जो कुछ भी परमात्मा से मिला है या मिलने वाला है उससे मानसिक रूप से सन्तुष्ट यानि प्रसन्न रहना। यह लोक कर्मबन्धन है और

कारण तथा कार्य के ताने–बाने से बना है। कर्म अहंभाव का कार्य है, कर्माशय पंचक्लेशों का संयुक्त कार्य है, कर्माशय प्रारब्ध का कारण है और प्रारब्ध कर्मबन्धन है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कर्मबन्धन से मुक्ति का सर्वोत्तम उपाय बताया है कि –

यदृच्छालाभसन्तुष्टः द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते।।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्वशं नागच्छेत् तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।।

अर्थात् परमात्मा के सुनियोजित कर्मविधान के अनुसार जो कुछ भी तथा जैसा भी लाभ प्राप्त हुआ हो, सदैव उससे सन्तुष्ट रहना, राग तथा द्वेष के मायिक द्वन्दों से चित्त को प्रभावित न होने देना तथा किसी भी कृतकर्म की सफलता अथवा असफलता में समानभाव द्वारा चित्त को शान्त रखने वाले जीव को कर्मबन्धन से मुक्ति मिल जाती है। स्वभावतः इन्द्रियों का अपने–अपने विषयों में राग–द्वेष रहता है। अतः मायिक बन्धन से मुक्ति के लिए मोक्षार्थी को इन्द्रियों के वशीभूत नहीं होना चाहिए। मानव–जीवन में प्राप्त होने वाली सुख–सुविधाएँ अथवा विपदायें यह सभी प्रारब्ध का फल है अथवा तीव्र पुरुषार्थ का परिणाम होता है। शास्त्र इस तथ्य की पुष्टि करता है कि –

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।
ते आह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात्।।

(योगदर्शन 2/13,14)

''तीव्रसम्वेगानामासन्नः''

अर्थात् कर्माशय के जो कर्म फल देने के लिए परिपक्व हो जाते हैं उन्हें विपाक कहा जाता है। यह विपाक ही जीव की योनि, योनि की आयु तथा उस योनि के जीवनकाल में प्राप्त होने वाले सुख–दुःख के भोगों का निमित्त कारण है। उस योनि में जो तीव्र संवेग से किया गया पुरुषार्थ भी विपाक में प्रवेश कर जाता है। तप, ध्यान तथा समाधि जैसे यज्ञों से प्रसन्न हुए देवता या महापुरुषों के आशीर्वाद से प्रारब्ध में परिवर्तन होना देखा गया है। जिन साधकों को प्रारब्ध के इस स्वरूप पर दृढ़ विश्वास है वह सन्तुष्ट रहते हैं।

तीसरा, चौथा तथा पाँचवाँ नियम क्रियायोग है जिसका वर्णन हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। यह क्रियायोग सगुण तथा साकार स्वरूप में उस परमात्मा की आराधना है जो सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान होने के साथ परम कृपालु, आनन्दरूप, परम हितैषी तथा मायाध्यक्ष हैं। इसीलिए इसका यह महान विशेष महत्व है कि –

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्य: मोक्षयिष्यामि मा शुच:।।
ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

(गीता 18/61/66)

सर्वगुह्यतमं भूय: श्रुणु मे परमं वच:।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्।।

मन्मना भव मद्‌भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।

(गीता 18/64, 65)

अपि चेदसुदुराचारो भजति मां अनन्यभाक्।
साधुरेव स: मन्तव्य: सम्यग्विपरितो हि स:।।
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शाश्वत्शान्ति निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्त: प्रणश्यति।।
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना: पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेम वहाम्यहम्।।

(गीता 9/22,30,31)

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।
तेषामेव अनुकम्पार्थं अहमज्ञानजं तम:।
नाश्यामि आत्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।।

(गीता 10/10,11)

अर्थात् सगुण उपासना का महत्व वर्णनातीत है। इसका फल उपरोक्त श्लोकों में परमात्मा के मुखारविन्द से प्रकट हुआ है। मैं इस गुप्त रहस्य का वर्णन करने से पूर्व एक और रहस्य बताना चाहता हूँ जिसका संकेत वेदों में किया गया है।

छन्दांसि यज्ञा: क्रतव: व्रतानि।
भूतं भव्यं यच्च वेदा: वदन्ति।
अस्मात् मायी सृजते विश्वमेतत्।
तस्मिन् चान्यो मायया सन्निरुद्ध:।।

(श्वेता. उप. 4)

आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि।
भावांश्च सर्वान् विनियोजयेत् यः।
तेषामभावे कृतकर्मनाशः।
कर्मक्षये याति सः तत्वतः अन्यः।।

(श्वेता. उप. 6/4)

कल्पयति आत्मनात्मानं आत्मादेवः स्वमायया।
स एव बुध्यते भेदान् इति वेदान्तविनिश्चयः।।
जीवं कल्पयते पूर्वं ततो भावान् पृथग्विधान्।
बाह्यान् आध्यात्मिकांश्चैव यथाविद्यः तथास्मृतिः।।

(माण्डूक्यउप. वै. 12,16)

अर्थात् इस संसार में परमात्मा की भूमिका अति विचित्र है। ऐसे चलचित्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती जिसमें निदेशक स्वयं सभी पात्रों की भूमिका निभाये तथा सम्पूर्ण दृश्य भी स्वयं सृजित करे। परमात्मा ने सृष्टि की रचना करने से पूर्व ही अनन्त प्राणादि मायिक भावों की, अनन्त रूपों तथा पदार्थों की कल्पना कर अनन्त विस्तार वाला माया का सुनियोजित विधान बनाकर, स्वयं उसमें प्रवेश कर जीवात्मा के रूप में स्वयं को ही त्रिगुणबन्धन, पंचक्लेशबन्धन तथा कर्मबन्धन के रूप में बाँधकर सम्मोहित कर लिया और इसे अविद्या की गुणमयी सृष्टि का नामरूप दे दिया तथा ज्ञानचक्षु प्रदान कर विद्यावान स्वरूप में अपने को अवतरित भी किया। वेदशास्त्रों तथा विद्यावान महापुरुषों की वाणी के रूप में योग तथा भक्ति का ऐसा विधान भी दे दिया जिसके द्वारा जीवात्मायें अपने त्रिबन्धनों को काटकर विद्यावान महापुरुषों की श्रेणी में आ सकते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के रूप में इस विधान का सरलतम मार्ग भी दर्शा दिया कि मायिक संसार के समस्त धर्मों का परित्याग कर अपने मन तथा बुद्धि को योग तथा भक्ति के माध्यम से यदि परमात्मा को आत्मनिवेदन कर दिया जाये तो सभी बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है। कोई जीवात्मा कितनी भी पापयुक्त हो, वह जब अनन्यभाव से लोक तथा धर्म के सभी व्यापारों की चित्तवृत्तियों का निरोध कर अपने अन्तःकरण में केवल परमात्मदर्शन की वृत्ति धारण करती है तो तुरन्त उसका अन्तःकरण परमात्मा के ज्ञानस्वरूप की ज्योति से दैदीप्यमान हो जाता है और इस ज्ञानचक्षु के उदय होते ही माया की अविद्या का अन्धकार स्वतः नष्ट हो जाता है और सभी मायिक बन्धन कट जाते हैं।

अष्टांगयोग का तीसरा साधन 'आसन' है। स्थूलशरीर को कुछ समय के लिए किसी विशेष आकृति में बांधकर रखना आसन कहलाता है। इस साधन से शरीर रोगमुक्त रहता है

जिससे कि अन्य साधन सुगमता से किये जा सके। योग की दृष्टि से योगदर्शन की परिभाषा है –

स्थिरसुखमासनम्।।

शरीर को स्थिरता का सुख प्रदान करने वाली साधना आसन है। सुखानुभूति सतोगुण का परिणाम है। अतः आसन ऐसा होना चाहिए जिसके साधन से तमोगुण तथा रजोगुण क्षीण हों किन्तु सतोगुण की वृद्धि हो। भगवान श्रीकृष्ण ने निर्देश दिया है कि –

समं कायशिरोग्रीवं धारयन् अचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।।
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युंज्यात् योगमात्मविशुद्धये।।

(गीता 6/12,13)

अर्थात् आसन ऐसा होना चाहिए जिसमें शरीर इस प्रकार स्थिर बना रहे कि रीढ़ की हड्डी के साथ सिर, गर्दन तथा धड़ एक ही लम्बवत रेखा में रहे जैसा कि पद्मासन तथा सिद्धासन में रहता है। इस प्रकार के आसन से बहिर्मुखी इन्द्रियाँ क्षीण होती हैं और चिन्तन आज्ञाचक्र में स्थिर होता है। इस आसन में बैठकर शरीर तथा इन्द्रियों की क्रियायें स्थगित हो जाती हैं और मन तथा बुद्धि के द्वारा परमार्थचिन्तन करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है। बाह्यज्ञान की शून्यता से चित्त में धारणा तथा ध्यान की योग्यता का विकास होता है।

अष्टांग योग का चतुर्थ अंग 'प्राणायाम' है। इस साधन में प्राण को नियंत्रित किया जाता है तथा नाड़ियों का शोधन होता है। नाड़ीशोधन से अविद्या का आवरण क्षीण होता है जैसा कि महर्षि पतंजलि का कथन है कि –

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।।

अर्थात् प्राणायाम से ज्ञान का कामादिरूप आवरण क्षीण होता है। प्राणायाम की परिभाषा है कि –

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।।

अर्थात् आसन सिद्ध हो जाने के बाद जब शरीर स्थिर हो जाय तब नासिकारन्ध्र से लम्बे यानि दीर्घ श्वास की अन्तर्गति को पूरक तथा बहिर्गति को रेचक कहा जाता है। इन दोनों गतियों का विच्छेद यानि स्तम्भन कुम्भक कहलाता है। इसी कुम्भककाल को बढ़ाते जाना प्राणायाम की साधना है। प्राण का हमारे जीवन से, हमारे चित्त से तथा शरीर से गहरा सम्बन्ध है, क्योंकि यह सब प्राण की शक्ति से ही शक्तिवान तथा क्रियावान हैं। वेदवाणी का कथन है कि –

''प्राणो वा ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च।।''

(छान्दो. उप. 5/1/11)

अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति में सर्वप्रथम प्राण की ही उत्पत्ति है और इसी से पंचभूतात्मक जगत की उत्पत्ति हुई। अतः प्राण सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वज्येष्ठ है। शास्त्र का कथन है कि –

ऐषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः यस्मिन् प्राणः पंचधा संविवेश।

प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां सर्वं जनयति प्राणः चेतोंशून पुरुषः पृथक्।।

तस्मिन् विशुद्धे विभवति एषो आत्मा।।

(मुण्डक उप. 3/1/9)

यथाग्नेः क्षुद्राः विस्फुल्लिंगाः व्युस्फुटन्ति।

तथैव आत्मनः सर्वे प्राणाः सरूपाः सहस्त्रशः।।

यच्चित्तः प्राणमायाति प्राणः तेजसा युक्तः।

सहात्मना यथासंकल्पितं लोकं नयति।।

(प्रश्न. उप. 3/10)

न वायुक्रिये प्रथमोपदेशात्।।

(ब्रह्मसूत्र)

अर्थात् जिस प्रकार अग्नि से अग्नि का रूप तथा तेज लेकर सहस्त्रों ज्वालायें निकलती हैं उसी प्रकार अक्षरब्रह्म से आत्म तेज लेकर अनन्त प्राणों की उत्पत्ति हुई है। यह आत्मतेज से युक्त प्राण ही अनन्त शरीरों में जीवात्माओं के रूप में उदित हुए हैं जैसे कि आकाश अनन्त घटादि में घटाकाशों के रूप में उदित होता है। यही प्राण परमात्मा की माया द्वारा निर्मित चित्तों में ओतप्रोत हो गया है अतः शरीर का त्याग करते हुए संस्कारों से युक्त जैसा चित्त प्राण में लीन रहता है। उसी के संकल्पों के अनुकूल अन्य लोकों में आत्मतेज से युक्त होकर ही गमन करता है। यह प्राण वायुक्रिया नहीं है, क्योंकि पंचभूतों की उत्पत्ति भी प्राण से है। अतः चित्तवृत्तिविहीन चित्त स्वतः ही प्राण में व्याप्त आत्मतेज से प्रकाशित हो जाता है और साधक को परमात्मदर्शन हो जाता है। विशुद्ध चित्त में ही आत्मसाक्षात्कार होता है।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि प्राणायाम के द्वारा प्राणजयरूप हठयोग सिद्ध होने पर योगी को परमात्मदर्शन हो जाता है किन्तु हठयोग गुरुदेव के संरक्षण में ही सम्भव है अन्यथा प्राण जंगल में स्वतन्त्र शेर के समान है, उस पर विजय में भयकर खतरा है। वैसे विशुद्ध चित्त तथा प्राणजय सम्पूरक हैं।

अष्टांगयोग का पाँचवां साधन "प्रत्याहार" है। इस साधन का भी चित्त शुद्धि तथा योगसिद्धि में विशेष महत्त्व है। इसकी परिभाषा है कि –

स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकारः इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।।

अर्थात् अपने-अपने विषयों के सम्बन्ध से मुक्त होकर इन्द्रियों का चित्त के स्वरूप में ही तदाकार हो जाना "प्रत्याहार" है। जब हमारी इन्द्रियों का अपने विषय से सम्पर्क होता है, तब

उनमें विषयाकार वृत्ति उत्पन्न होती है, जब मन इस वृत्ति को ग्रहण करता है तब मन वृत्त्याकार होकर संकल्प करता है और तुरन्त यह संकल्प बुद्धि में प्रवेश कर जाता है, बुद्धि चित्तवृत्ति के रूप में चित्त में प्रकाशित हो जाती है और आत्मा बुद्धि के साथ तदाकार होने के कारण इस बुद्धिसंवेदना को अपने अन्दर अनुभव करती है और भोक्ता की भ्रान्ति में मोहित क्षेत्रज्ञ की उत्पत्ति हो जाती है। यही नामरूप की उपाधि विश्वरूप धारण कर लेती है। इन्द्रियजनित वृत्तियाँ ही संसारचक्र चलाती हैं। भगवान श्रीकृष्ण का कथन है कि –

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत् तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।।
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेण अनलेन च।।
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः अस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैः विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्।।
तस्मात्त्वमिन्द्रियाणि आदौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्।।

अर्थात् माया की सृष्टि में इन्द्रियों का अपने–अपने विषयों में राग अथवा द्वेष निहित रहता है, क्योंकि उस विषय के स्वाद में यदि मन को सुख की अनुभूति है या अनुकूलता है तब राग होगा और यदि दुःखानुभूति अथवा प्रतिकूलता है तब द्वेष होगा। इस प्रकार जब मन इन्द्रियों का अनुगमन करता है तब वह अपने साथ बुद्धि का भी हरण कर लेता है। इसलिए योगजिज्ञासु को इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना परमावश्यक है। यह रागद्वेष ही कामविकार है जिसने आत्मज्ञान पर आवरण डाला हुआ है और मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों के माध्यम से जीवात्मा को अज्ञान के अन्धकार में मायामोह में बाँधकर रखता है, उसे अपने नित्यानन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप तथा सर्वत्र व्याप्त तथा सर्वाधार चैतन्यात्मा का बोध ही नहीं होने देता। अतः योग के साधक को प्रत्याहार का पालन करते हुए इन्द्रियों का नियमन कर मन पर संयम करना चाहिए जिससे कि ज्ञान तथा विज्ञान के नाशक कामविकार से मुक्ति मिल सके।

● ● ●

'सब प्रकार से परमात्मा के ही शरण'

लज्जा, भय, मान, बड़ाई और आसक्ति को त्याग कर एवं शरीर और संसार में अहंता, ममता से रहित होकर केवल एक परमात्मा को ही परम आश्रय, परमगति और सर्वस्व समझना तथा अनन्य भाव से अतिशय श्रद्धा, भक्ति और प्रेमपूर्वक निरन्तर भगवान् के नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूप का चिन्तन करते रहना एवं भगवान् का भजन, स्मरण रखते हुए ही उनके आज्ञानुसार कर्तव्यकर्मों का निःस्वार्थ भाव से केवल परमेश्वर के लिए आचरण करना यह "सब प्रकार से परमात्मा के ही शरण" होना है।

योगेश्वर गम्भीरनाथ जी महाराज का जीवन वृत्त

(गतांक से आगे)

आरंभ में योगीवर एक सप्ताह या पखवाड़े के बाद अपनी योग–गुहा से बाहर निकला करते थे। दूर–दूर से आये हुए भक्त, मुमुक्ष एवं आर्त्तजन उनके साधनस्थल में उपस्थित होकर नियत समय में उनके दर्शनों की प्रतीक्षा करते। गम्भीरनाथ जी उस समय भी अंतरमुखीन ही रहा करते थे। मौन एवं प्रशांतवदन गम्भीरनाथ भक्त–मण्डली को आशीर्वाद देकर पुनः अपने योग–प्रकोष्ठ में लौट जाते थे और ध्यानस्थ हो जाते।

मौनी योगीवर एक बार लगातार तीन मास तक अपनी योग गुहा में ही रह गये। इस समय की अत्यंत उग्र साधना के फलस्वरूप उन्हें अभीप्सित परम वस्तु प्राप्त हुई। अमित योगसामर्थ्य प्राप्त कर लेने पर एक शक्तिधर महाज्ञानी पुरुष के रूप में उनका अभ्युदय हुआ।

गम्भीरनाथ जी सत्ता में योगविभूति, ज्ञान एवं माधुर्य का अपूर्व समाहार देखा जाता था। अपने साधन–एश्वर्य को वे इतने सहज स्वच्छंद भाव से मधुरता के साथ वहन किये रहते कि एक असाधारण योगी के रूप में सर्वसाधारण के लिए उन्हें पहचानना संभव नहीं था। हाँ, उस समय के जो विशिष्ट साधक एवं ब्रह्मज्ञ पुरुष थे उनकी दृष्टि में गम्भीरनाथ जी की लोकोत्तर सत्ता छिपी नहीं थी।

गम्भीरनाथ जी अपने योगेश्वर्य को यों सर्वसाधारण में प्रकट नहीं करते थे। इस प्रकार की समस्त शक्ति–विभूतियों को वह प्रपंच कहा करते थे। किंतु सर्वथा स्वाभाविक रूप में योगीवर की योगविभूति की लीला स्थान विशेष में कभी–कभी प्रकट हुए बिना नहीं रहती। सूर्य के उत्ताप के समान उनके सहज योगेश्वर्य की दीप्ति उनके समग्र परिपार्श्व को देदीप्यमान कर देती।

अक्कू और मुन्नी ये दोनों कुर्मी–बन्धु बहुत दिनों तक स्वामी जी की सेवा में लगे रहे। उनका सारा परिवार ही धीरे–धीरे इन महात्मा की शरण में आ गया। एक बार बाबा का प्रिय भक्त अक्कू किसी कठिन रोग से पीड़ित हुआ, बचने की कोई आशा नहीं थी। अन्त में एक दिन देखा गया कि रोगी मरणासन्न अवस्था में पहुंच गया है। शरीर में प्राण का कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ रहा है। आत्मीयजन मृतक के संस्कार का प्रबंध करने में लगे हुए हैं। अक्कू का छोटा भाई मुन्नी शोक विह्वल होकर धैर्य खो रहा था। दौड़ा–दौड़ा गम्भीरनाथजी के आसन के पास आ पहुँचा। बाबा का पांव पकड़ रो रो कर कहने लगा, 'बाबा आपका एक निष्ठ सेवक अक्कू चल बसा किन्तु हम लोग जानते हैं कि आपके लिए असाध्य कुछ नहीं है। कृपा कर आज आप उसे बचायें।'

ध्यान–मग्न योगी ने आँखें खोलीं। आर्त–आकुल जन के क्रंदन ने उन्हें करुणार्द्र कर

दिया। मुन्नी को घर जाने का आदेश देते हुए उन्होंने कहा कि शव का अग्निसंस्कार रोक रखो। इसके बाद साथ वे शीघ्र ही अक्कू की रुग्न शय्या के पास पहुंचे। भक्त का शरीर स्पर्श करने के बाद गम्भीरनाथ जी ने कमण्डलु से जल लेकर कुछ बूंदें उसके मुख में डाल दीं। जो लोग वहां उपस्थित थे सबने आश्चर्य के साथ देखा कि अक्कू में प्राण के लक्षण पुनः प्रकट होने लगे हैं। उसने धीरे-धीरे आँखें खोलीं और बिछावन पर करवट बदली। उस दिन उसके लिए पथ्य की जो व्यवस्था की गई वह भी बड़ी विचित्र थी। अक्कू के पथ्य के लिए खिचड़ी तैयार करने का आदेश देकर बाबा गम्भीरनाथ कपिलधारा के आसन पर लौट गये। इसके बाद भी अक्कू बहुत दिनों तक जीता रहा।

प्रयाग के कुम्भ मेला में एक बार दंगा हो गया। किसी कारणवश उत्तेजित होकर वैष्णव नागा साधुओं ने योगियों एवं सन्यासियों पर आक्रमण कर दिया। मेला में उस दिन खून-खराबी हो गई और योगियों में कितने ही घायल हुए। योगी सम्प्रदाय के नेता गम्भीरनाथ जी उस समय उधर ही डेरा डाले हुए थे। ध्यानासन पर बैठे उनके कानों तक इस उत्तेजना और मारपीट की कोई खबर नहीं पहुंची थी। लाठी और चिमटा लिए हुए जब नागा साधु उनकी छावनी में प्रवेश करने जा रहे थे उस समय भी वह अचल ध्यानस्थ बैठे हुए थे।

इसी समय एक भक्त उनके आसन के सम्मुख उपस्थित होकर जोर से चिल्ला उठा- 'महाराज जरा देखिये तो कैसी विपत्ति आ पड़ी है। मारपीट करने के लिए ये सब भीतर चले आये हैं।' इस बार गम्भीरनाथ जी का ध्यान टूटा। आँख खोलकर उच्च स्वर में केवल इतना ही बोले, 'बस शांत होओ, शांत होओ।' क्षण भर में एक जादू जैसी घटना हो गई। आक्रमणकारी नागा एकाएक रुक गये। उनकी उत्तेजना एक बारगी शांत हो गई। लाठी, चिमटा आदि झुकाकर वे नतमस्तक धीरे-धीरे वहाँ से चल दिये।

● ● ●

(क्रमशः)

भगवान् की दया का अवलम्बन जीव के लिए परम अवलम्बन है। इससे बड़ा सहारा और कोई नहीं हो सकता। दया पर विश्वास करने वाले मनुष्यों को तो इसके प्रमाण की आवश्यकता ही नहीं होती। जिसने भगवान् की दया का आश्रय लिया, वही स्नेहमयी जननी की सुखद गोद की भाँति भगवान् की निरापद गोद में सदा के लिए जा बैठा। परंतु सुदृढ़ विश्वास के बिना ऐसा नहीं हो सकता। मनुष्य विश्वास हुए बिना भगवान् की दया का आश्रय नहीं लेता, भगवान् की दया के बिना मनुष्य के मन से जगत् के विषयों का आश्रय नहीं छूटता और जब तक विषयों का आश्रय है, तब तक किसी प्रकार भी सच्चे सुख और सच्ची शान्ति की झाँकी नहीं हो सकती। विषयों का आश्रय तो दूर की बात है, विषयों की सूक्ष्म वासना भी वास्तविक शान्ति का उदय नहीं होने देती। बात सर्वथा सच है, गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी भी कहते हैं कि जब तक विषयों की झूठी मिठास का माधुर्य बना है, तब तक अमृत से हजार गुनी मीठी रामभक्ति भी फीकी ही लगती है-

तुलसी जौ लौं विषय की मुधा माधुरी मीठि।
तौ लौं सुधा सहस्र सम राम भगति सुठि सीठि।।

|| श्री रामलाल प्रभवे नमः || || सद्गुरुदेवाय नमः ||

श्री रामनवमी महोत्सव व श्री प्रभुजी की जयन्ती समारोह

सभी गुरु भाई और बहिनों को यह सूचित करते हुए अपार हर्ष हो रहा है कि महाप्रभु रामलाल जी महाराज का 125वाँ प्राकट्य दिवस श्री सिद्धगुफा सवांई धाम में दिनांक 17, 18 व 19 अप्रैल, 2013 को बड़े ही धूम-धाम से मनाया जा रहा है। चैत्र नव रात्रारम्भ 11 अप्रैल, 2013 से हो रहा है।

सभी श्रद्धालु गुरुभाई बहिनों से निवेदन है कि उक्त तिथियों में सवांई धाम में आकर सत्संग लाभ लें तथा पुण्य के भोगी बनें।

जय गुरुदेव की!

निवेदक
आश्रमवासी सन्तगण
श्री सिद्धगुफा सवांई,
आगरा

• • •

'विज्ञातारमरे केन विजानीयात'

—: स्वामी विवेकानन्द :—

विज्ञातारमरे केन विजानीयात — विज्ञाता को कैसे जानोगे? ज्ञाता को कोई जान नहीं सकता, क्योंकि यदि वह समझ में आने योग्य होता, तो वह कभी ज्ञाता न रह जाता और यदि तुम आइने में अपनी आँखों का बिम्ब देखो, तो तुम उन्हें अपनी आँखें [illegible] कह सकते, वे कुछ और ही हैं, वे बिम्बमात्र हैं। अब बात यह है कि यदि यह आत्मा — यह [illegible] सर्वव्यापी पुरुष साक्षी मात्र है, तो इससे क्या हुआ? यह हमारी तरह न चल फिर सकता [illegible] है, न संसार का संभोग कर सकता है। यह बात लोगों की समझ में नहीं आती कि जो सा[illegible] वह किस तरह आनन्द का उपभोग कर सकता है। "हे हिन्दुओ, तुम सब साक्षी स्वरूप [illegible] से तुम लोग निष्क्रिय और अकर्मण्य हो गये हो" — यह बात लोग कहा करते हैं। उनकी इस बात का उत्तर यह है, 'जो साक्षी स्वरूप है, वही वास्तव में आनन्दोपभोग कर सकता है।' अगर कहीं कुश्ती लड़ी जाती है तो अधिक आनन्द किन्हें मिलता है? — जो कुश्ती लड़ रहे हैं उन्हें या जो दर्शक हैं उनको?

इस जीवन में जितना ही तुम किसी विषय में साक्षी स्वरूप हो सकोगे उतना ही तुम्हें उससे अधिक आनन्द मिलता रहेगा। यथार्थ आनन्द यही है और इस युक्ति से तुम्हारे लिए अनन्त आनन्द की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब तुम इस विश्व ब्रह्माण्ड के साक्षी स्वरूप हो सको। तभी मुक्त पुरुष हो सकोगे। जो साक्षी स्वरूप है, वही निष्काम भाव से स्वर्ग जाने की इच्छा न रख, निन्दा–स्तुति को समदृष्टि से देखता हुआ कार्य कर सकता है। जो साक्षी स्वरूप है, आनन्द वही पा सकता है, दूसरा नहीं। अद्वैतवाद के नैतिक भाग की विवेचना करते समय उसके दार्शनिक तथा नैतिक भाग के अन्तर्गत एक और विषय आ जाता है, वह मायावाद है। अद्वैतवाद के अन्तर्गत एक एक विषय के समझने में ही वर्षों लग जाते हैं और व्याख्या करने में महीनों लग जाते हैं, इसलिए इसका मैं उल्लेख मात्र ही करूँगा। इस मायावाद को समझना सभी युगों में बड़ा कठिन रहा है। मैं तुमसे संक्षेप में कहता हूँ, मायावाद वास्तव में कोई वाद या मत विशेष नहीं है, यह देश, काल और निमित्त की समष्टि मात्र है — और इस देश, काल, निमित्त को आगे नाम–रूप में परिणत किया गया है। मान लो समुद्र में एक तरंग है। समुद्र से समुद्र की तरंगों का भेद सिर्फ नाम और रूप में है, और इस नाम और रूप की तरंग से पृथक कोई सत्ता भी नहीं है, नाम और रूप दोनों तरंग के साथ ही हैं, तरंग विलीन हो जा सकती है, और तरंग में जो नाम रूप है, वे भी चाहे चिर काल के लिए विलीन हो जायें, पर पानी पहले की तरह सम मात्रा में ही बना रहेगा। इस प्रकार यह माया ही तुममें और हममें, पशुओं में और मनुष्यों में, देवताओं और मनुष्यों में पार्थक्य पैदा करती है। सच तो यह है कि यह माया ही है जिसने आत्मा को मानो लाखों प्राणियों में बाँध रखा है और उनकी परस्पर भिन्नता का बोध नाम और रूप से ही होता है। यदि उनका त्याग कर दिया जाय, नाम और रूप दूर कर दिये जावें, तो यह सदा के लिए अन्तर्हित हो जायेगी, तब तुम वास्तव में जो कुछ हो, वही रह जाओगे। यही माया है। और फिर यह कोई सिद्धान्त भी नहीं है, केवल तथ्यों का कथन मात्र है।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2012-14 Feb.-March 2013

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

कामान् यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र।
पर्याप्त कामस्य कृतात्मनस्त्विहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः।।

(मुण्डकोपनिषद् 3/2/2)

अर्थात् जो भोगों को आदर देने वाला मानव उनकी कामना करता है, वह उन कामनाओं के कारण उन-उन स्थानों में उत्पन्न होता है जहाँ वे उपलब्ध हो सकें। परन्तु जो पूर्णकाम हो चुका है, उस विशुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुष की सम्पूर्ण कामनायें यहीं सर्वथा विलीन हो जाती है।

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल [illegible] राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई [illegible] आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : [illegible] शर्मा